

कलियुग केवल

नाम अधारा

श्री स्वामी चिदानन्द



प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर २४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१५
(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—63

निःशुल्क वितरणार्थ

‘द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर’ के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा ‘योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर २४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड’ में मुद्रित।

For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

प्रकाशकीय

परम आराधनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जन्मशती के पुनीत अवसर की निर्दिष्ट शुभतिथि २४ सितम्बर २०१६ है। इस मंगलमय महोत्सव को मनाने हेतु मुख्यालय शिवानन्द आश्रम की सुनिश्चित योजना-अनुसार परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के प्रबोधक प्रवचनों से समाविष्ट एक सौ पुस्तिकाओं का प्रकाशन निःशुल्क वितरणार्थ किया जा रहा है।

विश्वबंध सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के दिव्य जीवन-सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसारार्थ परम पूजनीय श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज व्यापक रूप से देश-विदेश में आध्यात्मिक यात्रा करते हुए असंख्य जिज्ञासुओं, भगवद्भक्तों को अपने स्वतःस्फुरित सहज, अतीव गहन प्रेरक प्रवचनों द्वारा दिव्य जीवन का पथ निर्देशित करते रहे। सद्गुरुदेव की दिव्यानुभूति के अनुसार स्वामी चिदानन्द जी के प्रवचन एक सन्त-हृदय के सहजानुभूत अन्तर्ज्ञानयुक्त प्रकटित भावोद्गार हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका 'कलियुग केवल नाम अधारा' श्री स्वामी जी महाराज द्वारा बीकानेर, राजस्थान में दिये गये चार प्रवचनों का संकलन है। मुख्यालय शिवानन्द आश्रम के अंतेवासियों द्वारा इन प्रवचनों के अभिलेखन, संपादन तथा संकलन कार्यों में प्रेम पूर्ण सेवा-सहयोग के लिये हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

परम पिता परमात्मा, हमारे आराध्य श्री सद्गुरु भगवान् श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज और परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के अनन्त शुभाशीर्वाद सब पर रहें!

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

विषय-सूची

१. कलियुग केवल नाम अधारा	५
२. मंत्र-दीक्षा की महिमा	२२
३. शान्ति और आनन्द के एकमात्र स्रोत भगवान् . . .	३१
४. शीघ्र भगवत्प्राप्ति कैसे हो?	४५

१. कलियुग केवल नाम अधारा^१

उज्ज्वल आत्मस्वरूप, परमपिता परमात्मा की दिव्य अमर सन्तान!

श्रीमद्भगवद् गीता में, इस ब्रह्माण्ड यह हमारा विश्व, सूर्य मंडल, चन्द्र मंडल, तारे इन सबके सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता और ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता भगवत् तत्त्व का वर्णन है। अन्य मजहबों के धर्मग्रन्थों बाइबल, कुरान आदि में केवल मात्र इस पृथ्वी का और हमारा यह जो ब्रह्माण्ड है, उसका ही वर्णन है और इनका सृष्टिकर्ता भगवान् है, बस वे इतनी ही बात कहते हैं। लेकिन वैदिक धर्म में, प्राचीन काल के उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की अपरोक्ष अनुभूतियों के आधार पर उस 'परात्पर तत्त्व' का विस्तृत ज्ञान दिया गया है, यह अनुभव सिद्ध ज्ञान है। साक्षात्कार करके, उस तत्त्व के विषय में मानव भाषा में घोषित किया गया है। वैसे तो कहते हैं कि यह तत्त्व 'अवाङ्मनगोचर है, वाणी विचार और बुद्धि से परे है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

उसका वर्णन करने की कोशिश करके, हार कर वाणी वापिस आ जाती है, उसके बारे में विचार करने और समझने की कोशिश करके हार कर बुद्धि वापिस आ जाती है। वह अचिन्तनीय है, वह अवर्णनीय है। उसके बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं। फिर भी अपने परात्पर अनुभव को साधारण मानव भाषा में समझाने की कोशिश करते हुए उन्होंने कहा "वह अनादि, अनंत, असीमित है, उसकी कोई सीमा नहीं है। वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का नायक है। ऐसा यह एक ब्रह्माण्ड नहीं है, ऐसे हजार ब्रह्माण्ड नहीं हैं,

^१महेश भवन में दिनांक २६.११.८९ को दिया गया प्रवचन

लाख नहीं हैं, करोड़ ब्रह्माण्ड नहीं, अरे! असंख्य अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं जिनका वह सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता है। ऐसा वह परात्पर तत्त्व है।” उनकी क्या व्याख्या है, क्या नाम है? नहीं, वह तो नाम रूप से परे है, देश काल से परे है, निर्गुण नाम रूप रहित है फिर भी उनकी अवस्था को बताने वाले कई नाम उनको दिए गए हैं अनन्त है, परब्रह्म है, आद्यन्त रहित है, अतीत है, परात्पर है। किसी ने उनको आनन्द रूप में अनुभव किया, किसी ने उस तत्त्व को परम शान्ति के रूप में अनुभव किया, किसी ने उनको अवर्णनीय सौन्दर्य के रूप में अनुभव किया, किसी ने उनको केवल ज्ञान के रूप में अनुभव किया जिसे हम देख नहीं सकते हैं। उन्होंने कहा कि वह सूर्य कोटि समप्रभ एक करोड़ सूर्य के समान ऐसा प्रचंड प्रकाश का पुंज है। इसलिए अनेक नाम देते वक्त यह भी कहा कि भगवान् परमज्योति स्वरूप है। इस परम ज्योति स्वरूप परमात्मा की बात करते हुए भगवान् स्वयं गीताज्ञानोपदेश में अपने अत्यन्त प्यारे मित्र, शिष्य अर्जुन को कहते हैं

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। (१३/१७ गीता)

वह सब अंधकार से परे ज्योतियों का भी ज्योति है। हम ज्योति को जानते हैं, हमने देखा हुआ है। चिराग, दीया जो अग्नि से जलाया जाता है, अग्नि से और ज्यादा प्रकाशमय बिजली को हम जानते हैं। वर्षा ऋतु में गड़गड़ाहट के साथ जो बिजली चमकती है उसे हम देख नहीं सकते हैं। यह तो वर्षा ऋतु की बात है। बारह मास में सूरज का प्रकाश हमारे अनुभव के अन्दर है, चन्द्रमा का प्रकाश हमारे अनुभव के अन्दर है। जब रात में सूरज नहीं है और कृष्ण पक्ष है तो चंद्रमा भी नहीं है, उस वक्त हम तारों के जगत को देखकर चकित होते हैं “अहा! कितना सुन्दर है, कैसा चमक रहा है?” लेकिन वह तत्त्व तो इन सब ज्योतियों से परे है इसे और स्पष्ट करने के वास्ते कहते हैं

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति

कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

वहाँ पर उस प्रकाश की भूमिका में सूरज नहीं है, चन्द्रमा भी नहीं है, तारे भी नहीं हैं, विद्युत भी नहीं है। जो कुछ प्रकाश यहाँ पर है, सब उस प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहे हैं, उस ज्योति से ही यहाँ सब ज्योतिर्मय है। सूरज, चन्द्र, तारे, बिजली, अग्नि सब उसकी ज्योति से ही प्रकाशित हो रहे हैं।

वह ज्योति है परम ज्योति स्वरूप परमात्मा। वह ज्योति हम सबों के अन्दर है

ज्योतिषामपि तज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विद्धितम् ॥ (१३/१७ गीता)

हर एक इन्सान के अन्दर वह ज्योति चमक रही है, हर एक इन्सान के अन्दर को प्रकाशित कर रही है। वह ज्योति साक्षात् ज्ञानस्वरूप ज्योति है, भगवान् की दिव्य ज्योति है। तो हमारे अंदर ऐसी ज्योति होते हुए भी हम किसलिए मूर्खता के कार्य करते हैं, अज्ञान की बात करते हैं? इसका क्या कारण है? समझो कि पांच सौ वॉट का एक बल्ब है उसे हम जलाएं तो पूरा का पूरा यह हॉल एकदम ज्योतिर्मय हो जाएगा लेकिन यदि उसके ऊपर एक बड़ी बाल्टी या टोकरी रख दें तो क्या होगा? अन्दर तो ज्योति है, लेकिन यहाँ अन्धकार रहेगा क्योंकि उसके ऊपर एक ढक्कन लग गया है, आवरण आ गया है। यही बात है वह ज्योति तो है लेकिन उसके ऊपर ढक्कन है, आवरण है। वह आवरण क्या है? वह आवरण है अविद्या का, अज्ञान का। भगवान् की ही एक अचिन्त्य शक्ति है उस शक्ति को कहते हैं माया। यह माया ही हर एक जीवात्मा के अन्दर व्यक्तिगत रूप में बैठी हुई है इस व्यक्तिगत रूप में माया को कहते हैं अविद्या। विद्या माने ज्ञान और ज्ञान

की विपरीत अवस्था को अविद्या कहते हैं। वह अविद्या ही आवरण के रूप में हमारी अन्तःज्योति को ढके हुए है। इस कारण ज्ञान होते हुए भी हम अज्ञान में पड़े हुए हैं।

इस आवरण-निवारण के वास्ते अनेक योग हैं, साधनाएँ हैं पतञ्जलि का अष्टांग योग है, ज्ञान योग है, भक्ति योग है, कर्म योग है, लय योग है और कृण्डलिनी योग है। लेकिन गुरु महाराज कहते हैं “कलियुग में इस आवरण-निवारण के वास्ते सबसे सरल, सुलभ, अचूक और शक्तिशाली साधना है भगवान् के नाम का जप।” नाम के अभ्यास को, मंत्र के रटने को जप कहते हैं। गुरु महाराज ने कहा कि जप द्वारा ही हम भगवत्-साक्षात्कार कर सकते हैं। यह एक परिपूर्ण योग-मार्ग है। इसलिए स्वामी जी ने ‘जपयोग’ नामक एक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने जप-विधि का विस्तार से वर्णन किया है और पुरश्चरण के बारे में भी बताया है। पुरश्चरण का अर्थ होता है मंत्र में जितने अक्षर हैं उतने लाख मंत्र जप। जैसा कि ‘ॐ नमः शिवाय’ यह पंचाक्षर मंत्र है, इस मंत्र का पाँच लाख दफे जप किया तो एक पुरश्चरण हुआ। ‘ॐ नमो नारायणाय’ मंत्र में आठ अक्षर हैं तो इस अष्टाक्षरी मंत्र के पुरश्चरण के लिए आठ लाख मंत्र जप करना होगा। पुरश्चरण सीमित समय में क्रमबद्ध रूप में करना होता है इसलिए जो पुरश्चरण करता है वह पहले ही प्रण ले लेता है, संकल्प ले लेता है कि मैं इस मंत्र का पुरश्चरण इतनी अवधि में करूंगा, बीस दिन में करूंगा या साठ दिन के अन्दर करूंगा।

गुरु महाराज ने हर एक मंत्र को घड़ी रखकर जप करके देखा कि पाँच मिनट में कितनी माला हो सकती है और एक घंटे में कितनी संख्या जप हो सकता है और प्रतिदिन ६ घंटे जप करने से कितनी संख्या होगी। ऐसे एक मंत्र का अक्षर-लक्ष जप करने में कितना समय लगेगा, पूरा हिसाब-किताब करके उन्होंने एक सूची ‘जपयोग’ पुस्तक में दी है। इसमें उन्होंने एक और अद्भुत कार्य किया है। हरेक आदमी एक गति से मंत्र जप नहीं कर सकता

है। किसी की मन्द गति होती है, किसी की मध्यम और किसी की तीव्र । गुरु महाराज ने यह भी बताया है कि मन्द गति से जप करने पर किस मंत्र का क्या हिसाब बैठेगा, मध्यम गति से करने में क्या हिसाब बैठेगा और तीव्र गति से जप करने में क्या हिसाब बैठेगा ? इस प्रकार उन्होंने हमारे वास्ते यह ज्ञान प्रदान किया है क्योंकि कलियुग में जप विधि द्वारा भगवत् प्राप्ति बहुत सरल है।

आप जानते हैं कि नाम रटते-रटते रत्नाकर डाकू ऋषि बन गये।

उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।

उल्टा नाम जप करके वाल्मीकि ब्रह्म समान हो गये तो सीधा, सच्चा नाम जपने से क्या होगा ? इस तरह से नाम जप की महिमा है। भगवान् और भगवान् का नाम एक ही है उनमें कोई अंतर नहीं है। गीताज्ञानोपदेश में भगवान् स्पष्ट रूप से कहते हैं वह जो परमज्योति है, तुम्हारे अन्दर ही है लेकिन ढकी हुई है आवरण से। आवरण को निकालने से अपने आप प्रकट हो जाएगी। उसको हमें बनाना नहीं पड़ता है जैसे कि खनिज पदार्थों को उत्पन्न नहीं करते हैं, बनाते नहीं हैं। कारखाने में तो कृत्रिम चीजों को बनाते हैं लेकिन सोना, चांदी, हीरा ये तो हैं ही। इनके और हमारे बीच जो अड़चन है उसको निकालने से मतलब है। निकाल देने में जो वास्तव में है उसको हम प्राप्त कर सकते हैं। उसी प्रकार से वह परम ज्योति स्वरूप परमात्मा हमारे अन्दर छिपा हुआ है, वह हमारे निकट से निकटतम है।

कोई चीज हमारे नजदीक से नजदीक है लेकिन फिर भी हमसे बाहर है। यह तबला थोड़ा दूर है, दूरी उससे नजदीक है और यह घड़ी तो उससे भी नजदीक है इसको हाथ लगाकर स्पर्श कर सकते हैं, फिर भी यह बाहर ही है। इसको स्पर्श करना है तो चेष्टा करनी पड़ती है। लेकिन जो चीज हमारे अन्दर है वह तो निकट से निकटतम है, वास्तव में वह तो हमारा निज स्वरूप है। हम उस परिपूर्ण, परम ज्योतिस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप

भगवान् के दिव्य अंश हैं इसलिए हमारा वास्तविक निज व्यक्तित्व वही है आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शांतिमय अनन्त ज्योतिस्वरूप। परन्तु अज्ञान के कारण हम समझते हैं कि हमारे भीतर दुःख है, भय है, चिन्ता है, व्याकुलता है जबकि हमारे भीतर इन दुःखभयशोकादि का कोई स्थान भी नहीं है, इनका अत्यन्त अभाव है। हम प्रयत्न भी करें तो भी अपने भीतर दुःख, चिन्ता, भय को नहीं बना सकते हैं। एक सामान्य उदाहरण है कि हम विद्युत शक्ति द्वारा बल्ब, ट्यूबलाइट आदि से अंधकार दूर करते हैं। प्रकाश करने के लिए हमें कई प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं क्योंकि इस विश्व में अंधकार है, दिन के साथ-साथ रात है। छोटे-छोटे गांवों में जहाँ अभी तक बिजली की सुविधा नहीं पहुँची है वहाँ प्रकाश के लिए प्रतिदिन कुछ न कुछ प्रबन्ध करना पड़ता है। मिट्टी के दीपक में कड़वा तेल डालकर रूई की बत्ती बनाकर अंधकार दूर करते हैं। तेल का अक्षय स्रोत न होने के कारण दीया बुझाकर अंधकार में ही सोते हैं। सूर्यास्त होते ही हम सभी को भी अंधकार मिटाने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न करना पड़ता है यह अंधकार की समस्या पूरे जगत की है।

यदि इस अंधकार की समस्या को सुलझाने हेतु हम सूर्यनारायण भगवान् के पास पहुँचें और उनसे पूछें कि हम इस अंधकार को कैसे मिटाएं? तो सूर्यनारायण कहेंगे “क्या होता है अंधकार?” क्योंकि उनके अनुभव में तो अंधकार जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। सूर्य के पास तो अनादिकाल से शतप्रतिशत परिपूर्ण प्रकाश है। प्रकाश के अतिरिक्त वहाँ किसी अन्य तत्त्व की गुंजाइश ही नहीं है। इसी प्रकार आप परिपूर्ण आनन्दस्वरूप भगवान् के दिव्य अंश हैं। आपके भीतर आनन्द, शांति, ज्ञान के प्रकाश के अतिरिक्त अन्य कोई चीज है ही नहीं। फिर भी यह एक विचित्र स्थिति है कि किसी भी संत, महात्मा के पास जाकर भक्तगण यही कहते हैं कि महाराज! हमारे घर में बहुत समस्या है, अशान्ति है। हम बहुत दुःखी हैं। कोई लड़के के लिए दुःखित है तो कोई लड़की के लिए दुःखित है। यह

दुःख कहाँ से आया? इस दुःख का कारण कहाँ से आया? वास्तव में आपके भीतर दुःख जैसी चीज है ही नहीं। लेकिन फिर भी आप कैसे अनुभव करते हैं कि आपके भीतर दुःख है? अब आप देखिए कि आपका हाथ एकदम साफ है। उसमें से न तो कोई सुगंध आ रही है और न ही दुर्गंध। लेकिन यदि आपके यहाँ बहुत से मेहमान आने वाले हैं उनके लिए चाय-नाश्ते की व्यवस्था करनी है, पकौड़ियां बनानी हैं तो आप रसोई घर में जाकर आधे घंटे तक प्याज काटते हैं तब प्याज की यह गंध पूरा दिन आपके हाथ में रहेगी। यही गंध अगले दिन भी रहेगी। इसी प्रकार यदि आप कृष्ण भक्त हैं, जन्माष्टमी के दिन रात्रि में बारह बजे पूजा-अर्चना के लिए अपनी सेवा अर्पित करने हेतु आप भीमसेनी कपूर और केसर डालकर चंदन घिसने का कार्य करते हैं। चंदन घिसते-घिसते यही सुगन्ध आपके हाथों में रह जाएगी।

हम जिसका सम्पर्क रखते हैं, उसका मुख्य गुण हमारे भीतर आ जाता है। अग्नि बहुत गर्म है, यदि हम इससे दूर हैं तो हमें उसकी उष्णता का अनुभव नहीं होता है। अग्नि में लकड़ी डालें और हम जलती हुई लकड़ी को पीछे से पकड़े रहें तो उसका ताप अनुभव नहीं होता है। लेकिन अग्नि में डाली गई लोहे की छड़ को आप पीछे से भी पकड़ेंगे तो आपका हाथ गरम हो जाएगा। ऐसा क्यों है? क्योंकि हमारे भीतर लोहे का स्पर्श आ जाता है और उसका ताप हमें भी अनुभव होता है। यह सम्पर्क और निकट रहने का अद्भुत प्रभाव है। तो इसी प्रकार आप आनन्दमय आत्मा हैं, आप किसी अन्य तत्त्व के निकट पहुँच गए हैं, उसके सम्पर्क में आ गए हैं, अपने स्थान को छोड़कर अन्तःचेतना किसी अन्य तत्त्व के सम्पर्क में आ गई है इसीलिए उस अन्य तत्त्व की जो अवस्था है, हम अपने भीतर भी उसी अवस्था का अनुभव करने लगते हैं।

सिवाय आपके नित्य निज आत्म स्वरूप के अतिरिक्त अन्य सभी जो तत्त्व हैं जैसे शरीर है, इन्द्रियाँ हैं, प्राण है, मन है, बुद्धि है, अहंकार है,

चित्त है ये सब अनात्म तत्त्व हैं। आप इन अनात्म तत्त्वों के सम्पर्क में आ गए हैं और उनसे जुड़ गए हैं बस यही कारण है आपके दुःखों का। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य जी ने अपने एक पूरे ग्रन्थ में इसी एक मुख्य तत्त्व के बारे में बताया है और यह तत्त्व है आत्म तत्त्व। आत्मा केवल आनंदस्वरूप है, केवल ज्ञानस्वरूप है, शांतिस्वरूप एवं प्रकाशमय है। वह इन अनात्म तत्त्वों के निकट सम्पर्क और अपने वास्तविक स्वरूप की विस्मृति के कारण, अज्ञान के कारण इन तत्त्वों के साथ एकता में बंध गया है। वह समझता है मैं बुद्धि हूँ, मैं शरीर हूँ, मैं मन हूँ, यह मन की उथल-पुथल और अशान्ति मेरा अनुभव है। इसी विचित्र भ्रान्ति के कारण जो भीतर नहीं है, उन्हीं दुःख-भय-शोकादि को हम अपने भीतर अनुभव करते हैं। इस विषम अवस्था को समाप्त करना होगा, फिर जो हम हैं, वही होकर रहेंगे। हमारा जो वास्तविक निज स्वरूप है, उसको बनाना नहीं पड़ता है, वह है, वह हमेशा है।

(कुछ क्षण मौन बैठकर) मैं बात नहीं करता हूँ। आप क्या अनुभव करते हैं खामोशी। मौन रहने के कारण ही आप इस खामोशी का अनुभव कर पाते हैं। खामोशी तो हमेशा ही है, आवाज बंद होते ही उसका अनुभव होता है। खामोशी को हमें बनाना नहीं पड़ता है क्योंकि उसका कभी अभाव नहीं है, वह सदैव है इसके लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती है, कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। उसके विपरीत तत्त्व अर्थात् आवाज को उसके ऊपर चढ़ाते रहने से वह नहीं है ऐसा प्रतीत होता है। लेकिन वह हमेशा है। इसी तरह आप हमेशा हैं लेकिन इसके प्रति अज्ञान व अविचार के कारण मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ ऐसा कहकर व्यर्थ मैं हम अपने निज स्वरूप के ऊपर अनात्म तत्त्वों को चढ़ाते आ रहे हैं, कभी बंद नहीं करते हैं। इसीलिए जो हम सदा से हैं राजाधिराज, आनन्दमय आत्मा उसको हमने प्रकट नहीं होने दिया है। उस पर अविवेक और अविचार के कारण कुछ न कुछ चढ़ाते आए हैं।

यह आनन्द, यह शान्ति आपका जन्मसिद्ध हक है। यह आपकी नित्य, निजी अपरिवर्तनीय अवस्था है, सहजावस्था है। इसकी प्राप्ति के लिए आपको कुछ नहीं करना है। बस इसके विपरीत तत्त्वों को बनाते नहीं रहना है। यदि आप उन विपरीत तत्त्वों के प्रति चुप हो जाये तो अपने आप शांति और आनंद तत्क्षण आपके अनुभव में आ जायेंगे। 'केवल मैं हूँ' यह शान्ति है, यह आनंद है। मैं फलाना हूँ, मैं यह हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं यहाँ हूँ बस मैं हूँ को अन्य तत्त्व से जोड़ते ही आपकी समस्या शुरू हो जाती है। 'केवल मैं हूँ' यह आनन्द है क्योंकि आप आनन्द ही हैं। आप आनन्द का सारभूत तत्त्व हैं। जैसे दूध, दही और मट्ठा का सारभूत तत्त्व है मक्खन। इसी प्रकार केवल आनन्द और शान्ति, अनादिकाल से आपका अपरिवर्तनीय नित्य निज स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के लिए आपको कोई चेष्टा नहीं करनी है। आप इसके विपरीत जो कर रहे हैं उनको बंद करना है, केवल उनको बंद करने से मतलब है। आपके भीतर न अंधकार है, न अज्ञान है। इन अविद्या, अज्ञान आदि अनात्म तत्त्वों के साथ जो आपका निकट सम्पर्क है, वह सम्पर्क भी इतना बाधक नहीं है, लेकिन आपने तो एक कदम और बढ़ाकर इनके साथ एकता का सम्बन्ध जोड़ दिया है। मैं यह हूँ के स्थान पर आप कहते हैं यह मैं हूँ। वेदान्त में इसे कहते हैं अध्यास। देहाध्यास, देहात्मबुद्धि अर्थात् देह के साथ एकता की बुद्धि। यह बुद्धि नहीं है यह विपरीत बुद्धि है, विपरीत ज्ञान है। उपाधियों को अपना वास्तविक रूप समझ लिया है। यह देहात्मबुद्धि मूल कारण है इसको दूर करने का प्रयत्न करना है, इसके लिए सदैव उस सत्य की उपासना करते हुए असत्य का निराकरण करते जाना है।

मनोबुद्धयहंकार चित्तानि नाहं

न च श्रोत्र जिह्वे न च घ्राण नेत्रे।

न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः

चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

सत्य की उपासना स्थूल मन से नहीं होती है। जब तक मन में स्थूलता है, बहिर्मुखत्व है, एक चीज से दूसरी चीज, दूसरी से तीसरी की तरफ जाने की प्रवृत्ति है, तब तक यह संभव नहीं है। हमारा मन भी बंदर के समान चंचल है जैसे बंदर पेड़ की एक टहनी पर कुछ क्षण बैठता है, फिर दूसरी टहनी और फिर कभी तीसरी। वह एक स्थान पर दो मिनट भी टिक नहीं सकता है। इसी प्रकार मन भी चंचल है। यदि हम इस चंचलता को हटा कर, मन को स्थिर बना पाएं, तभी इस सत्य की उपासना कर सकेंगे कि मैं आत्मा हूँ, अजर, अमर, अविनाशी हूँ, मैं ऐसा एक तत्त्व हूँ जिसे अस्त्र-शस्त्र घायल नहीं कर सकते, अग्नि दहन नहीं कर सकती, जल मुझे भिगो नहीं सकता है और पवन मुझे सुखा नहीं सकती है।

अज्ञो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

(२/२० गीता)

मैं अजन्मा हूँ, मेरे लिए न जन्म है, न मृत्यु है, मैं नित्य हूँ, शाश्वत हूँ, अनन्त हूँ, अनादि हूँ, अमर हूँ, अविनाशी हूँ लेकिन मैंने इस नाशवान शरीर, हड्डी-मांस के पिंजरे के साथ अपनी एकता जोड़ ली है। इस उथल-पुथल करने वाले अशान्त मलिन मन के साथ एकता स्थापित कर ली है। लेकिन यह आपकी गलती नहीं है। यह आपके माता-पिता की भूल है। वे जन्म के साथ ही इस अज्ञान को आपके साथ जोड़ देते हैं, अज्ञान कूट-कूट कर भर देते हैं। सबसे पहले आपको नाम का लेबल दिया है। आपको कोई नाम नहीं देते तो समस्या आधी होती। लेकिन पाँच-छः बच्चे हैं, आपको बुलाना है तो कैसे पुकारें? इसीलिए हर एक को नाम दे दिया है। बचपन से ही उस लेबल के साथ हमारा अपनत्व जोड़ दिया गया है जैसे कि पूछा जाए मैं कौन हूँ तो हम कहेंगे मैं मुन्नू हूँ, मैं रामू हूँ, मैं बिल्लू हूँ, मैं बिट्टू हूँ। इस प्रकार बचपन से ही माता-पिता की मेहरबानी से इस शरीर के साथ अध्यास हो गया है। कहते हैं कि बेबी के लिए कोट बनायेंगे। अरे! बेबी कोई चीज है। ऐसा क्यों नहीं कहते कि इस शरीर के लिए कोट बनायेंगे

और बेबी भी यही समझती है कि मैं एक शरीर हूँ जिसके लिए कोट बन रहा है। इस प्रकार हमारे भीतर बचपन से ही छोटे रूप में अज्ञान का बीज बोया गया है। जैसे-जैसे हम बढ़ते गए, यह अज्ञान भी बढ़ता गया और अन्तःचेतना अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गयी। निज स्वरूप की विस्मृति के कारण जो हमारा स्वरूप नहीं है उससे एकता हो गयी है। इसे समाप्त करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। इसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, सत्संग श्रवण करना चाहिए, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए तथा आत्मस्वरूप का मनन चिन्तन करना चाहिए। जो स्वरूप नहीं है उसका निराकरण करना चाहिए।

यमुना किनारे पर एक अनुभवी, ज्ञानी, विद्वान साधु रहते थे। सब उन्हें भोले बाबा कहते थे। उन्होंने श्रुतियों के ज्ञान को अपनी सरल, सुलभ हिन्दी कविता 'वेदान्त छन्दावली' में प्रस्तुत किया है। उसमें दो पंक्तियाँ मुख्य है **इस देह को मैं मानना, सबसे बड़ा यह पाप है।** इस देह को 'मैं' मानने के कारण ही हमारे भीतर अहंकार आता है, स्वार्थ आता है, अभिमान आ जाता है, कामक्रोधादि आते हैं, ऊँच-नीच की भावना आती है। सबसे पहला दोष और पाप यही है जो हम नहीं हैं उसे 'मैं' मानना।

इस देह को मैं मानना, सबसे बड़ा यह पाप है। (क्योंकि)

सब पाप इसके पुत्र हैं, सब पाप का यह बाप है।।

यह समस्त दुष्कर्मों, पापों, अधर्म एवं अत्याचार का जनक है क्योंकि देह को 'मैं' मानने से ही हमारे भीतर स्थूल अहंकार, स्थूल अभिमान और स्थूल स्वार्थ आ जाता है, जिससे हमारा सबके साथ संघर्ष होता है, झगड़ा होता है। देह को 'मैं' मानना अर्थात् देहात्मबुद्धि ही सबसे भयंकर पाप है। यह सब पापों का सरदार है। इसको ही समाप्त करना है। हम अन्य योद्धाओं के साथ संघर्ष क्यों करें, सेनापति को ही पकड़ लें, पूरी सेना शरण में आ

जाएगी। राजा को पकड़ते ही, सारी सेना क्या, मंत्रिमंडल भी हाथ जोड़कर हमारी अधीनता स्वीकार कर लेगा।

देहात्मबुद्धि को मिटाना ज्ञान योग का मार्ग है। यह कठिन है। इसलिए उपासना करके, साकार सगुण ब्रह्म को प्रसन्न करके, भगवत् नाम का जप करके, पुरश्चरण करके तथा अनुष्ठान करके चित्त शुद्धि करनी चाहिए। भगवान् का नाम रटते-रटते चित्त शुद्धि हो जाती है तथा आत्म साक्षात्कार होता है। भगवान् का नाम जप करने से नरकगामी अजामिल यमदूतों से बच गए। रत्नाकर डाकू भी भगवत् नाम रटने से 'वाल्मीकि ऋषि' बन गए, रामावतार होने से पूर्व ही अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा उन्होंने रामायण लिख दी थी। रामायण संस्कृत साहित्य का पहला काव्य अर्थात् आदि काव्य है इसीलिए ऋषि वाल्मीकि को आदिकवि कहते हैं। नाप जप के प्रभाव से ही आदिवासी डाकू के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और वे आदिकवि बन गए। उन्हें ऐसा सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि जब श्री राम के पट्टाभिषेक के बाद माता सीता को वन में छोड़ा गया तो वे उन्हीं के आश्रम में रहीं। वहीं पर माता सीता ने लव-कुश को जन्म दिया। इसी प्रकार से नाम के प्रभाव से अनेक अद्भुत भक्त हुए हैं।

केवल हरि नाम का जप करते-करते बालक ध्रुव ऐसी तपोमय अवस्था में पहुँच गए कि तीनों लोक उनके तप से जलने लगे। तब देवाधिदेव इन्द्र भगवान् नारायण के पास पहुँचे और कहने लगे कि ध्रुव को दर्शन देकर उसकी तपस्या समाप्त कीजिए। हमें उसकी तपस्या के तेज से कष्ट हो रहा है। तो भगवान् नारायण ने ध्रुव को दर्शन दिए। केवल नाम जप से ध्रुव को भगवद्दर्शन हुए। उन्हें कुछ पता नहीं था, उन्होंने वेदान्त नहीं पढ़ा था, ऋषि मुनियों के पास जाकर योगासन, प्राणायाम, कुण्डलिनी के सम्बन्ध में नहीं सीखा था। केवल नाम जप करते करते इस अवस्था में पहुँचे थे।

इसी प्रकार से दैत्य हिरण्यकश्यपु के बालक प्रह्लाद के पास भी संस्कृत का विशेष ज्ञान नहीं था, वेद-वेदान्त का अध्ययन नहीं किया था। केवल नारायण का नाम था। 'नारायण नारायण नारायण' जप करते-करते वे इतने नारायणमय हो गये कि अग्नि उनको जला नहीं सकी और विष भी कुछ हानि नहीं कर सका। प्रह्लाद हरि के भक्त थे और हिरण्यकश्यपु हरि के बैरी। प्रारम्भ में हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को प्यार से समझाया "बेटा! इनका भजन छोड़ दो। यह हमारा शत्रु है। तुम तो मेरे प्यारे पुत्र हो, तुम पिता के शत्रु को क्यों प्रेम करते हो?" लेकिन प्रह्लाद नहीं माने तो हिरण्यकश्यपु का प्रेम वैर में परिणत हो गया। उन्होंने प्रह्लाद को सांपों से डसवाया, मत्त गज के पैरों तले कुचलवाया, पर्वत से गिरवाया, समुद्र में डुबाने का प्रयत्न किया परन्तु सभी प्रयास विफल रहे। अन्त में अपनी बहिन होलिका जिसे अग्नि में न जलने का वरदान प्राप्त था से कहा कि तुम प्रह्लाद को गोद में लेकर अग्नि में बैठो। प्रचण्ड अग्नि तैयार की गई। बालक प्रह्लाद तो 'हरि नारायण, हरि नारायण' जप में मस्त था। होलिका ने सोचा कि प्रह्लाद तो दो ही क्षण में भस्म हो जाएगा। परन्तु होलिका की होली हो गई और प्रह्लाद वैसा का वैसा ही रहा। तो क्या होलिका को प्राप्त वरदान झूठा सिद्ध हुआ? नहीं, वरदान तो सभी परिस्थितियों में सत्य होता है। लेकिन हरिभक्त के विपरीत कोई वरदान नहीं जाता है। हिरण्यकश्यपु को ऐसा वरदान प्राप्त था कि वह न दिन में मरेगा और न रात में, न अस्त्र से मरेगा और न शस्त्र से, न मनुष्य द्वारा मरेगा और न पशु द्वारा, न आकाश में और न पृथ्वी पर भगवान् ने इन सब शर्तों को पूरा करते हुए अपने भक्त की रक्षा हेतु नृसिंहावतार लिया और वे खंभे से प्रकट हुए, महल की देहरी पर, सायंकाल में अपनी गोद में लिटाकर, नखों से हिरण्यकश्यपु का वध किया। यह सब प्रभु नाम का प्रताप है।

सर्वत्र विराजमान प्रभु हमारे भीतर भी विराजमान है, हमारे इतने निकट होते हुए भी अज्ञान के कारण हमें उनका अनुभव प्राप्त नहीं होता है।

यह अज्ञान हमारे भीतर देहाध्यास के रूप में है इसे निकालना है और इसे निकालने के लिए आत्मा का पुष्टिकरण और अनात्मा का निराकरण करना है। यह कार्य स्थूल मन द्वारा नहीं हो सकता है अतः स्थूल मन को सूक्ष्म करना है और कलियुग में इसका एक ही उपाय है भगवान् के नाम का अभ्यास।

इस नाम जप के अभ्यास से रत्नाकर डाकू तथा ध्रुव और प्रह्लाद जैसे बालकों ने भगवत्-साक्षात्कार किया। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त हैं। भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का एक पात्र होने के कारण, एक सोपान होने के कारण नाम में भगवान् की दिव्य शक्ति है। नाम को हृदय में रखकर उसका अभ्यास करने से वह दिव्य शक्ति प्रकट हो जाती है जो इसी जीवन में, इसी शरीर में हमारा उद्धार कर हमें दिव्य बना देती है, जीवन्मुक्त बना देती है; ऐसा नहीं कि मरणोत्तर मोक्ष प्रदान करें। कलियुग में भी केवल नाम के अभ्यास से कई जीवात्माओं ने ब्रह्मसाक्षात्कार करके सिद्धि प्राप्त की है। इसके अनेक उदाहरण हैं। छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जिन्होंने केवल 'श्री राम जय राम जय राम' के जप द्वारा भगवत् साक्षात्कार किया। अभी हमारे समय में, इसी पीढ़ी के, मंगलौर (कर्नाटक) के आनंद आश्रम के संत पप्पा रामदास भी एक उदाहरण हैं जिन्होंने केवल 'श्री राम जय राम जय राम' के जप से आत्म साक्षात्कार किया, आनंदमय अवस्था को प्राप्त किया। वे योगाभ्यास वेदान्त आदि कुछ नहीं जानते थे।

नाम जप का यह रास्ता आपके लिए भी खुला है। यह सरल सुगम साधना है। लेकिन हम क्या करते हैं जो सरल सुगम हमारे सामने है, अति परिचय के कारण उसकी उपेक्षा करते हैं कि नाम रटने से क्या होगा, एक ही नाम जपते रहने से कुछ नहीं प्राप्त होगा। हम सोचते हैं कि नाम जप तो अनपढ़ का काम है। हमें तो वेदान्त पढ़ना है, संस्कृत पढ़नी है। यह माया का ही खेल है कि हम सीधा-सीधा रास्ता छोड़कर विकट रास्ते में फंस जाते हैं जबकि भगवत् साक्षात्कार के लिए सरल सुगम मार्ग तो नाम जप ही

है। गुरु महाराज भी कहते थे “भगवन्नाम ही सरल, सुगम, अचूक, शक्तिशाली साधना है।” इन दो तीन शताब्दियों में, प्रत्येक प्रांत के चाहे वह पंजाब हो, उड़ीसा हो, बंगाल हो, गुजरात हो, राजस्थान हो, तमिलनाडु हो संतों व महापुरुषों ने नाम जप की महिमा बताई है। मीरा बाई ने कहा है **पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।** यह मोक्ष का साधन है **मोक्षसाधनसामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी।** नाम जप द्वारा भक्ति प्राप्त होती है और भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति। आपके सामने यह सरल रास्ता है, इसको आप शुरू करें। इसके लिए किसी विशेष योग्यता की जरूरत नहीं है, अन्य साधनों में विशेष योग्यता आवश्यक है। भगवान् कुछ नहीं चाहते हैं। वे यही देखते हैं कि हमारे हृदय में उनके लिए थोड़ा भी स्थान है या नहीं। भगवान् विद्वता, कुल, ऐश्वर्य, जात-पात का ख्याल नहीं करते हैं। वे केवल इतना देखते हैं कि जीवात्मा के हृदय में उनके लिए स्थान है अथवा नहीं। सूरदास जी ने अपने एक भजन में भी कहा है

दीनन दुःख हरण देव संतन हितकारी।

अजामिल गीध व्याध, इनमें कहो कोन साध।

अजामिल के पास क्या साधना रही, जटायु ने कौनसी साधना की?

पंछी को पद पढ़ात, गणिका सी तारी॥ १॥

पिंगला नाम गणिका थी, तोते को राम-राम सिखाते वह स्वयं रामभक्त बन गयी और उसका उद्धार हुआ।

ध्रुव के सिर छत्र देत, प्रह्लाद को उबार लेत।

भक्त हेत बांध्यो सेत लंका पुरी जारी॥ २॥

प्रभु अपने भक्तों के कष्टों को हरते हैं।

तन्दुल देत रीझ जात, साग पात सो अघात।

सुदामा के पास क्या था? फटे-पुराने कपड़े में तीन मुट्ठी चावल और विदुर के घर क्या था? भगवान् हृदय का प्रेम देखते हैं।

गिनत नहीं जूठे बैर, खाटे मीठे खारी॥ ३॥

भगवान् केवल हृदय देखते हैं, हृदय में क्या भावना है यह देखते हैं।

गज को जब ग्राह ग्रस्यो दुशासन चीर खस्यो।

सभा बीच कृष्ण कृष्ण, द्रौपदी पुकारी॥ ४॥

इतने हरि आए गयो, बसनन आरूढ़ भये।

सूरदास द्वारे ठाढ़ो, आंधरो भिखारी॥ ५॥

इस सुन्दर भजन द्वारा सूरदास जी प्रभु को उलाहना देते हुए कहते हैं “तुम दीनों के दुःख हरने आते हो, तुम्हें किसी चीज की जरूरत नहीं है केवल मात्र भक्त के हृदय में थोड़ा प्रेम और विश्वास हो और वह तुम्हें पुकारे तो तुम आ जाते हो। लेकिन पुकारते-पुकारते मेरा गला खराब हो गया, मेरे लिए तुम क्यों नहीं आते हो? तुम ध्रुव के लिए आए, प्रह्लाद के लिए आए, गज के लिए आए, द्रौपदी के लिए आए फिर तुम मेरे लिए क्यों नहीं आते हो?” इस भजन की मुख्य बात यही है कि भगवान् केवल भाव के भूखे हैं। उन्हें विद्या, धन-सम्पत्ति की भूख नहीं है। भगवान् मात्र एक चीज चाहते हैं हृदय का प्रेम।

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि भगवान् से आप कुछ भी मांगे, वे सब कुछ दे देते हैं लेकिन एक चीज देने में वे झिझकते हैं, पीछे हटते हैं और वह चीज है सच्चा प्रेम। क्योंकि भगवान् जिसको एक बार अपना सच्चा प्रेम दे देते हैं तो भगवान् को उसका गुलाम होना पड़ता है, अपनी स्वतन्त्रता खोनी पड़ती है। इसलिए भगवान् बाकी सब देने को तैयार हैं, परन्तु अपना सच्चा प्रेम देने में वे झिझकते हैं।

वृन्दावन में रहने वाले हमारे एक गुरु भाई कहा करते थे कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक को प्रेम द्वारा अपनी जेब में रख लिया तो हमें अन्य सब कुछ स्वतः ही प्राप्त हो जाएगा। इसी सम्बन्ध में वे एक कथा कहते थे कि एक राजा ने अपने राज्य में सभी वस्तुओं की दुकानें सजाकर एक बड़ा बाजार बनवाया और घोषणा करवाई कि जिस व्यक्ति को जो चाहिए, वह मुफ्त में ले सकता है। घोषणा सुनकर सभी इच्छित वस्तुएँ लेने लगे। नगर के बाहर एक पुरानी झोपड़ी में रहने वाली गरीब बुढ़िया भी उस बाजार में आई परन्तु उसने कुछ नहीं लिया। पूरे बाजार को पार करके वह राजमहल पहुँची तो दरबान ने उसे रोक कर पूछा “क्या चाहिए?” बुढ़िया ने कहा “मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल राजा जी से मिलना है।” राजा तक यह समाचार पहुँचाया गया कि एक बुढ़िया पूरे बाजार में कुछ नहीं लेना चाहती है, केवल आपसे मिलना चाहती है। राजा को आश्चर्य हुआ कि ऐसी बुढ़िया कौन है? उसने मिलने की अनुमति दे दी। दर्शन करते ही बुढ़िया ने राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा “मुझे केवल आप चाहिए।” ऐसा सुनकर राजा ने मंत्री को आदेश दिया कि वे इस गरीब बुढ़िया के लिए जीवन-पर्यन्त अन्न वस्त्रादि का प्रबन्ध करें। इसी प्रकार यदि हम भी त्रिलोकाधिपति को प्रेम द्वारा अपना बना लें तो क्या प्राप्त नहीं कर सकते हैं? लेकिन हमारे गुरु भाई यह भी कहते थे कि भगवान् की माया ऐसी प्रबल है कि भगवान् ‘का’ सब चाहते हैं, भगवान् ‘को’ कोई नहीं चाहता है। यही हमारी समस्या है। यदि हम भगवान् की माया को न चाहकर भगवान् को चाहें तो हमारा बेड़ा पार हो जाए। हरि ॐ तत्सत्!

२. मंत्र-दीक्षा की महिमा^२

उज्वल आत्मस्वरूप, परमपिता परमात्मा की दिव्य अमर संतान!

आज कई साधकों ने मंत्र-दीक्षा ली है। मंत्र-दीक्षा लेना-देना एक बहुत प्राचीन परम्परा है। मंत्र-दीक्षा की कितनी महिमा है, क्या आवश्यकता है, इसके बारे में भागवत में एक उपकथा आती है त्रिलोकसंचारी नारद मुनि एक बार भगवान् लक्ष्मीनारायण से मिलने वैकुण्ठ गए। भगवान् ने प्रेम से स्वागत किया। नारदजी ने प्रणाम करके जो वृत्तान्त सुनाना था भगवान् को सुनाया और भगवान् ने भी एक-दो प्रश्न पूछे। इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक मिलन हुआ, भगवान् को पुनः प्रणाम करके नारदजी ने विदा ली। नारदजी के जाने के बाद भगवान् ने जय-विजय को बुलाकर कहा कि जहाँ पर नारदजी खड़े थे, उस स्थान को पानी डालकर साफ कर दो। यह देखकर लक्ष्मीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कोई अपवित्र व्यक्ति हो तो उनके बैठे हुए स्थान को साफ भी करें लेकिन नारदजी तो देवर्षि हैं।

क्योंकि गीताज्ञानोपदेश में भगवान् स्वयं कहते हैं **देवर्षीणां नारदः** माने देवर्षियों में मैं नारद हूँ। मेरी दिव्यता सबसे अधिक मात्रा में नारद में है। ऐसे नारदजी के खड़े हुए स्थान को साफ करना तो आश्चर्य की बात है। लक्ष्मीजी भगवान् से पूछती हैं “आपने ऐसा क्यों किया?” कहा जाता है कि भगवान् ने जवाब दिया “नारदजी ने अभी तक किसी से दीक्षा नहीं ली है, वे परम पवित्र हैं लेकिन दीक्षा नहीं लेने के कारण इस दिव्य धाम वैकुण्ठ में रहने की उनकी योग्यता १०० प्रतिशत नहीं है ९९ प्रतिशत योग्यता

^२ दिव्य जीवन संघ, बीकानेर शाखा में दिनांक १९-११-९८ को दिया गया प्रवचन

है, १ प्रतिशत कमी है।” क्यों? क्योंकि दीक्षा नहीं ली है। माने मंत्र-दीक्षा की कितनी आवश्यकता है, कितना महत्त्व है?

मन्त्र-दीक्षा द्वारा ही तो ममता, मोह, माया में फंसा हुआ जीवात्मा गलत दिशा में अपनी प्रवृत्ति और चेष्टा को रोक कर सम्यक् दिशा में मुड़ता है, भगवान् के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ता है। भगवान् के साथ सम्बन्ध बनाने का यह शुभ मुहूर्त है क्योंकि मंत्र-दीक्षा के बाद व्यक्ति का पूरा का पूरा जीवन बदल जाता है, प्रपंच की दिशा को छोड़कर वह परमार्थ की दिशा में जाने लगता है। भगवत्-तत्त्व से नाता जुड़ जाता है और मंत्र जप करते-करते, अन्त में उन्हीं में जाकर वह अपना जीवन परिपूर्ण बना देता है। इस प्रकार मंत्र-दीक्षा से जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाता है, अधोगति की तरफ जाने वाला जीवन ऊर्ध्वगामी हो जाता है। डाकूरत्नाकर के जीवन में भी तो यही हुआ। जो भी यात्री जंगल के रास्ते से गुजरता था, उनको पकड़ कर, मारपीट करके उनका सब धन छीन करके वह अपना जीवन-यापन करता था। एक दिन कुछ ऋषि-मुनि वहाँ से जा रहे थे, उनके ऊपर भी हमला कर दिया, मारपीट करने लगा। उनके पास कुछ भी नहीं था। फिर भी वह कहने लगा “नहीं, जो कुछ भी है सब छीन लूँगा।” ऋषि बोले “देखो, नीच! जानते हो, तुम क्या कर रहे हो?” उसने कहा “मैं अपना धन्धा कर रहा हूँ।” ऋषि बोले “तुम्हारा धन्धा तुम्हें कहाँ पहुँचाएगा, यह तुम नहीं जानते हो।” डाकूरत्नाकर को कुछ अजीब लगा कि ये ऋषि-मुनि मुझसे बिल्कुल भयभीत नहीं हैं, आंख से आंख मिलाकर मुझसे सवाल पूछ रहे हैं। अभी तक मेरे पूरे के पूरे डकैती के धन्दे में मुझे ऐसा अनुभव नहीं हुआ है, अभी तक जिनके ऊपर आक्रमण करता था वे डर के मारे कांपने लग जाते थे, कहते थे सब कुछ ले जाओ, हमें छोड़ दो। लेकिन इन ऋषि-मुनियों के चेहरे पर भय का भाव भी नहीं है। कितनी अजीब बात है?

ऋषि-मुनियों ने उसे समझाने के उद्देश्य से कहा “यह महापातक है, तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा क्योंकि ऐसा एक विधान है जो अनुभव आप औरों को देते हो, वही अनुभव बाद में खुद को पाना पड़ता है। आदमी को दुःख-दर्द देकर तुम अपना नुकसान करते हो, तुमको भी रोना पड़ेगा, महान् दुःख उठाना पड़ेगा, संकटों को सहन करना पड़ेगा।” जब इस प्रकार रत्नाकर को थोड़ा धमकाया जाता है, वह घबरा जाता है और कहता है “नहीं, नहीं मुझे नहीं भुगतना पड़ेगा क्योंकि मैं यह कार्य अपने वास्ते नहीं करता हूँ, पत्नी और बच्चों के वास्ते कर रहा हूँ।” यह सुनकर वे सब हंसते हैं “मूर्ख! तुम ऐसा सोचते हो, जरा जाकर उनसे पूछो कि मैं डकैती करके, मार-पीट करके, छीन करके आप लोगों के वास्ते यह जो भी कपड़ा, जेवर, बर्तन, अनाज ला रहा हूँ किसी ने कहा है कि यह पाप है तो यह पाप तो आपके ऊपर ही होगा न, क्योंकि मैं तो आप लोगों के वास्ते कर रहा हूँ। देखो, तुम्हारे पत्नी और बच्चे क्या बोलते हैं।”

रत्नाकर बोला “मुझसे बचने का अच्छा उपाय कर रहे हो, मैं उनसे बात करने घर जाऊंगा और तुम सब यहाँ से भाग जाओगे। मुझे धोखा देते हो।” ऋषि बोले “देखो, हम ऐसे धोखा देने वाले व्यक्ति नहीं हैं, चाहे तो तुम हमारे हाथ बांध कर हम सबों को पेड़ से बांध दो, फिर जाकर पूछ आओ। हम यहीं रहेंगे।” ऋषि-मुनियों को पेड़ से बांधकर वह घर चला गया। घर के अन्दर से पत्नी की आवाज आई “आ गए, क्या लाए हो?” उसने कहा “नहीं, नहीं, कुछ बात करनी है।” पत्नी और बच्चे आए तो उनसे पूछा “आप तो जानते हो कि किस प्रकार मार-पीट करके, छीन करके मैं सब लेकर आता हूँ यह सब जो सम्पत्ति है, जो खाते हैं, पीते हैं, सब डकैती से ही लाकर देता हूँ। किसी ने आज कहा कि इस पाप का भुगतान करना पड़ेगा, आप ही के वास्ते यह कर रहा हूँ आप ही इसका भोग कर रहे हैं तो आप ही इसका भुगतान करेंगे।” पत्नी बोली “हम क्यों भुगतान करें? तुमने हमसे शादी की, घरगृहस्थी

बसायी, यह सब तुमने अपनी तरफ से किया। इसलिए हमारा पालन-पोषण करना तुम्हारी जिम्मेदारी है, तुम्हारा कर्तव्य है। नहीं करोगे तो तुम ही गुनाहगार होंगे। हमने तुमसे नहीं कहा था कि इस प्रकार अन्याय से पालन पोषण करो। इसलिए हम क्यों भागी बनें? हम तो इतना ही जानते हैं हमारी तरफ जो तुम्हारी जिम्मेदारी है, उसको तुम निभा रहे हो। हमको कुछ पता नहीं यह तुम कैसे करते हो? कैसे निभाते हो?” बच्चे भी बोले “हाँ, हाँ, माताजी जो कह रही है, वह ठीक है।”

अब तो जैसे रत्नाकर के सिर पर बिजली गिर गई अरे! मेरे साथ कोई भी नहीं है, इतने अरसे से जो यह पाप कर्म मैं करता आ रहा हूँ, इसका भुगतान मुझे ही करना पड़ेगा क्योंकि इन सबने तो साफ इन्कार कर दिया है कि हम भागी नहीं हैं। पता नहीं, मुझे क्या-क्या संकट उठाना पड़ेगा, ऐसा सोचकर डर गया। डर के मारे कांपते-रोते ऋषियों के पास गया। रत्नाकर भले ही डाकू था लेकिन आदमी सरल था उसके अन्दर कोई कपट नहीं था, वक्रता नहीं थी। इसलिए जाकर उनके चरण पकड़ लिये और फूट-फूट कर रौने लगा। ऋषि उसे उठा भी नहीं सके क्योंकि उनके हाथ बंधे थे। वे बोले “अरे भाई! रो मत, बताओ क्या हुआ? ऐसे निराश मत हो। भगवान् ने हर उलझन के लिए कुछ न कुछ उपाय बताया है। हम तुम्हें रास्ता बतायेंगे। दुःखी मत हो, हिम्मत रखो।” रत्नाकर रोते-रोते उनको पेड़ से छुड़ाता है और कहता है “मैं तो मारा गया, पता नहीं मेरी क्या अधोगति होगी? मुझे रास्ता दिखाओ।” ऋषि कहते हैं “देखो, कितना भी बुरा से बुरा कर्म क्यों न हो, यदि ऐसे पश्चात्ताप किया जाए कि मैंने कितना महापाप किया है, कितना गलत किया है और आंसू बहाये जाएं तो सब पाप धुल जाते हैं। पश्चात्ताप करके जो आंसू बहाता है भगवान् भी उसको क्षमा कर देते हैं। इसलिए तुम घबराओ मत। हम तुम्हें तरीका बतायेंगे।”

ऋषि-मुनि विचार-विमर्श करते हैं कि किस प्रकार इसका उद्धार किया जाए। उनके सामने एक धर्मसंकट खड़ा हो जाता है यह नीच है, अधम है, भगवान् के पवित्र दिव्य नाम का यह अधिकारी नहीं है लेकिन शरण में आया है तो तुकरा भी नहीं सकते। अन्त में निर्णय करते हैं कि यह दिव्य राम नाम के लिए अनाधिकारी है तो इसे 'राम-नाम' का उल्टा मंत्र देते हैं। देखो, भाई रत्नाकर! 'मरा मरा मरा' ऐसा जप करो। ऐसा करके उनको मंत्र-दीक्षा दी। यही सबसे प्रथम मंत्र-दीक्षा थी। 'मरा मरा मरा' राम राम में परिणत हो जाता है तो रत्नाकर 'मरा मरा मरा' जपते जपते महासमाधि में, तुरीयावस्था में पहुँच गए। मंत्रमय बन गए, नाममय बन गए, उन्हें बाहर की कुछ सुध-बुध ही नहीं रही। कई महीने बीत गए। वर्षा ऋतु आई, दीमकों ने उनके चारों तरफ मिट्टी से अपना घर (वल्मीक) बना लिया, आहिस्ते-आहिस्ते उनका पूरा का पूरा शरीर ढक गया। अन्दर जो 'राम राम' कह रहा है वह दिखाई नहीं दे रहा था, केवल मिट्टी का टीला जैसा दिख रहा था।

कुछ समय बाद वही ऋषि-मुनि जब तीर्थपर्यटन करके जंगल के उसी रास्ते से गुजरे तो उनको याद आया कि एक साल पहले इसी रास्ते पर हम पर एक डाकू ने हमला किया था, बाद में उसने पश्चात्ताप किया तो हमने उसे दीक्षित किया था। हमें देखना चाहिए कि अभी उसकी क्या स्थिति है? अभी भी इसी जंगल में कहीं निवास करता होगा। ऐसे बातचीत करते हुए आगे जा रहे थे कि एक ऋषि ने कहा कि मुझे कुछ अजीब सी आवाज सुनाई दे रही है भंवरे के गुंजन जैसी। सब चुप हो जाते हैं हाँ, हाँ, सचमुच कुछ आवाज आ रही है। आवाज कहाँ से आ रही है? एक दिशा में आगे जाते हुए आहिस्ते-आहिस्ते आवाज बढ़ती गयी, वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वल्मीक के अन्दर से 'राम राम राम' आवाज आ रही है। उन्होंने थोड़ी मिट्टी हटाई तो जटा दिखाई दी, फिर उन्होंने अपनी लाठी से खोद-खोद कर सारी मिट्टी हटा दी देखा तो रत्नाकर बैठा है, उसे कोई

होश नहीं है। तेज आवाज से 'राम राम' बोलकर उसको हिलाया। रत्नाकर ने आंखें खोलीं और देखा कि वही ऋषि हैं, उसने दण्डवत प्रणाम किया। उन ऋषियों ने कहा "आज से तुम एक ऋषि हो और अब तुम्हारा नाम 'वाल्मीकि' होगा क्योंकि तुम राम-नाम की उपासना में, तपस्या में इतने एकाग्र चित्त से लगे रहे कि तुम्हारे ऊपर 'वल्मीक' बन गया।" ऐसा करके मंत्र-दीक्षा के कारण रत्नाकर डाकू से वह महर्षि वाल्मीकि बन गये।

उल्टा नाम जपत जग जाना, वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।

जब उल्टे नाम का इतना प्रभाव है तो ठीक तरह से नाम जपें तो क्या नहीं हो सकता है यह महत्त्व है मंत्र-दीक्षा का। एक बात अच्छी तरह से समझो कि यह जो मंत्र-दीक्षा साधु-संन्यासियों द्वारा दी जाती है, वह केवल मात्र भगवत्-साक्षात्कार के उद्देश्य से ही दी जाती है, आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए ही दी जाती है। प्रपंच के किसी वस्तु-पदार्थ की प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं दी जाती है। इसलिए निष्काम भाव से, केवल भगवद्-प्राप्ति के वास्ते इसका प्रयोग होना चाहिए, प्रपंच में किसी इच्छा पूर्ति, कामना पूर्ति के लिए इसका प्रयोग नहीं होना चाहिए जैसे कि नौकरी मिल जाए, व्यापार में लाभ हो जाए। यह एक आध्यात्मिक साधना है, कर्मकाण्ड नहीं है।

मंत्र-दीक्षा प्राप्त व्यक्ति को दूसरों को नहीं बताना चाहिए कि मैंने मंत्र-दीक्षा ली है, यह मेरा मंत्र है। मंत्र तो आपके और भगवान् के बीच अत्यन्त रहस्यात्मक एक तत्त्व है इसलिए किसी को बताना नहीं चाहिए। हाँ, पति-पत्नी एक-दूसरे को मंत्र बता दें तो कोई दोष नहीं है क्योंकि उनको दो नहीं एक माना जाता है, पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी कहते हैं। सिवाय इस अपवाद के, अन्य को मंत्र नहीं बताना चाहिए और अन्य किसी व्यक्ति के रहते वक्त इष्ट मंत्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए क्योंकि उनको मालूम हो जाएगा। मंत्र आपके और भगवान् के बीच में गुप्त रखना चाहिए। साथ ही साथ जिस जिह्वा से, वाणी से भगवान् के दिव्य-पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं, उसे नाम उच्चारण करने के योग्य रखना चाहिए, पवित्र

रखना चाहिए। उसके द्वारा कोई गन्दी बात नहीं कहनी चाहिए, चुगली नहीं करनी चाहिए, अनावश्यक टीका-टिप्पणी नहीं करनी चाहिए, किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए, क्रोधयुक्त कटु वचनों का प्रयोग करके किसी को दुःखी नहीं करना चाहिए। मंथरा, शकुनि ने जिह्वा का दुरुपयोग किया, मात्र इस कारण ही तो अनर्थ हुआ था। इसलिए जिस वाणी शक्ति द्वारा भगवन्नाम का उच्चारण करना है, उसे अपवित्र नहीं करना चाहिए, उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

शिशुपाल की कथा तो आप जानते हैं वाणी का दुरुपयोग करके उसने अपने सिर को ही खो दिया। वह कृष्ण भगवान् को गाली दे रहा था। उसकी माता जी बहुत अच्छी थी, उन्होंने भगवान् से कहा कि मेरा पुत्र बड़ा नीच है, आप इसको क्षमा कर दो। कृष्ण भगवान् बोले “शिशुपाल कितनी भी गाली दे, कितने ही अपशब्द कहे, निन्यानवे तक मैं कुछ नहीं कहूँगा, सहन कर लूँगा। इसलिए अभी इसे रोक दो।” लेकिन शिशुपाल तो बीच सभा में गालियाँ देता रहा और भगवान् मानसिक गिनती करते रहते हैं एक, दो, तीन, चार, दस, बीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, निन्यानवे। पांडव सुनकर क्रोधित होते रहे, भगवान् ने उन्हें रोक दिया। भगवान् स्वयं प्रसन्न रहे, चुप रहे लेकिन जैसे ही निन्यानवे होकर १००वीं गाली दी, भगवान् ने सुदर्शन चक्र को संकेत दिया। आप जानते ही हैं कि महाभारत काल में कृष्ण भगवान् चतुर्भुज रूप में थे और सुदर्शन चक्र रूप में हमेशा उनके साथ रहता था। तभी तो अर्जुन कहते हैं “**तैनेव रूपेण चतुर्भुजेन** आपका विश्वरूप देखकर मैं घबरा गया हूँ इसलिए अपने पूर्व रूप चतुर्भुज रूप को धारण कर लीजिए।” इसलिए जैसे ही सौ नम्बर गाली दी, भगवान् का संकेत पाकर सुदर्शन ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया। एक क्षण पहले तो जीवित था, दूसरे क्षण में ही उसका रूंड अलग था, मुंड अलग था। इसलिए वाणी का बहुत संभाल कर प्रयोग करना चाहिए।

वाणी को पवित्र रखो, सत्यव्रती बनो, विनम्रतापूर्वक बोलो। ऐसे वचन बोलने चाहिए जिससे दूसरों को शान्ति प्राप्त हो, आनंद हो, प्रसन्नता हो, सुख हो। कभी क्रोध करने की स्थिति आए भी तो क्रोध का नाटक करें, जैसे कोई अध्यापक है, एक विद्यार्थी बहुत शोर करता है, पढ़ाई भी नहीं करता है उस पर क्रोध करना ही पड़ेगा। लेकिन उस समय भी आपका मन प्रशान्त रहना चाहिए, क्रोध का केवल नाटक करें। उस विद्यार्थी को डांट दें लेकिन बाद में उसे अलग से बुलाकर समझा दें कि तुम्हारे कल्याण के वास्ते हमें क्रोध करना पड़ता है। तुम्हें ऐसा गलत कार्य नहीं करना चाहिए। ऐसा प्रेम से उसको समझाएँ। गुरु महाराज भी कहते थे “मित भाषी बनो, मधुर भाषी बनो, नम्रता से बात करो।” तभी वाणी पवित्र बनेगी और भगवान् के दिव्य पवित्र नाम के उच्चारण के योग्य बनेगी। नाम-साधना में सफलता उन्हीं को मिलती है जो अत्यन्त नम्र होते हैं, सहनशील होते हैं, सबको सम्मान देते हैं लेकिन अपने सम्मान के वास्ते सपने में भी इच्छा नहीं करते हैं। ऐसा व्यवहार रखते हुए निरन्तर भगवन्नाम सुमिरन करें।

हरि नाम प्यारा सबका सहारा।

हरि नाम गाओ, सुख शान्ति पाओ।

कलियुग में हरि नाम ही सबका सहारा है। नाम-जप से, मंत्र-जप से ही इस अशान्त दुःखमय प्रपंच में आपको सुख और शान्ति मिल सकती है। क्योंकि हरिनाम सब दुःखों को दूर करने वाला है।

एक सार नाम हरी भज हरी। हरे हरी तेरी चिन्ता सारी।

सारी चिन्ताओं का हरण करने वाला है हरि का नाम। इतनी सुलभ साधना को छोड़कर तुम क्या कर रहे हो? नाम जप संसार के सब बंधन तोड़ देगा। संत तुकाराम ‘नामजप’ के प्रचारक थे। वे बोलते थे हरि नाम जपते-जपते जो भोजन किया जाता है, वह भोजन, वह अन्न अमृततुल्य

बन जाता है और तुम्हें पवित्र बना देता है **पवित्र ते अन्न हरि चिंतनी भोजन।**

नाम का इतना प्रभाव है, इतनी महिमा है कि यह जन्म-जन्मान्तर के पापों के ढेर ऐसे भस्म कर देता है जैसे एक चिंगारी कपास के ढेर को। इसलिए हरि नाम का, भगवान् के दिव्य नाम का जो अभ्यास करता है उसे कहीं जंगल में जाकर बैठने की जरूरत नहीं है, किसी गुफा में बैठने की जरूरत नहीं है, जहाँ पर वह है भगवान् स्वयं आकर उसको दर्शन देते हैं। मराठी में एक भजन है **जाछे मुखी सदा हरि त्याचे यज्ञ पावली पावली** पावली माने कदम। जो हमेशा नाम रटता रहता है उनका कदम-कदम यज्ञ के समान है, महान यज्ञ के समान फल देने वाला है। ऐसा नाम का प्रताप है। कलियुग में सबसे सुलभ, सरल, अचूक, प्रबल, उपाय हरि का नाम है। हरि ॐ तत्सत्!

३. शान्ति और आनन्द के एकमात्र स्रोत भगवान्^३

आनन्दमय आत्मस्वरूप!

परमपिता परमात्मा की दिव्य अमर संतान!

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।

आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥

यह श्लोक परम सौभाग्यशाली ऋषि वाल्मीकि के सम्बन्ध में कहा गया है कि कविता रूपी शाखा पर बैठकर सुमधुर कण्ठ से मधुराक्षर राम-राम का उच्चारण करने वाले वाल्मीकि रूपी कोयल को मेरा नमस्कार। यही श्लोक संत तुलसीदास के लिए भी परिपूर्णतया सही कहा जा सकता है जिन्होंने अपनी मधुर लेखनी से राम नाम की महिमा और राम-भक्ति के माधुर्य को, अपनी सुन्दर अतुलनीय महाप्रख्यात कविता रामचरितमानस के माध्यम से भारतवर्ष की सौभाग्यशाली जनता तक पहुँचाया। तुलसीदास प्रारम्भ से ही संत नहीं थे, वे भी ममता और मोह के जाल में फंसे हुए साधारण मानव थे। उनके भीतर जन्म से ही भगवत्-भक्ति, भगवत्-प्राप्ति की आकांक्षा तथा भगवद्-दर्शन की पिपासा नहीं थी। हमारी तरह ही, अपितु कह सकते हैं कि हमसे भी अधिक, वे माया-मोह के पाश में फंसे हुए थे। आप उनके पूर्वचरित्र को अच्छी तरह से जानते हैं कि संत तुलसीदास प्रख्यात होने के पूर्व कैसे थे? इसी प्रकार वाल्मीकि महर्षि होने के पूर्व कैसे थे? क्या थे? आप जानते हैं कि वे एक संसारी की तरह प्रपंच में, मोह-ममता के पाश में फंसे रहे। जब उन पर भगवत् कृपा हुई तो एक क्षण में उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो गया। तुलसीदास जी को

^३ तुलसी कुटीर में दिनांक २७-११-८९ को दिया गया प्रवचन

अपनी पत्नी द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ जिनके प्रति तुलसीदास जी की अत्यधिक आसक्ति थी। इसीलिए कहा है कि माया अविद्या माया होकर जीवात्मा को बन्धन में डालती है किन्तु वही माया जब विद्या माया के रूप में प्रकट होती है तो मोक्षदायिनी भगवती अनुग्रहस्वरूपा बन जाती है। संत तुलसीदास जी के जीवन में यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित है।

इस परिवर्तन के बाद संत तुलसीदास विवेकी हो गए, अनासक्त बन गए और उनके लिए प्रपंच में रस नहीं रहा। मात्र इतना ही नहीं हुआ अपितु जब उनमें जागृति आई, उनके जीवन में जमीन-आसमान का अन्तर आ गया। सब प्रपंच छोड़कर परमार्थ साधना में लग गए, महावैरागी हो गए और भगवान् के परम भक्त बन गए। उनके हृदय में प्रभु-दर्शन की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हो गयी। किस प्रकार प्रभु के दर्शन हों, रात-दिन यही लौ उनके भीतर लगी रही। प्रभुप्रेमी बन करके उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रभु की खोज में लगा दिया। वे कहते प्रभु दर्शन कहाँ होगा? कैसे होगा? कौन हमें मार्ग दिखाएगा?

बिन लाठी के निकला अंधा, राह कोई बता दे रे! और अन्त में प्रभु दर्शन हुआ, बाहर भी हुआ और भीतर भी हुआ।

**कोई कहे वह है वृन्दावन में, कोई कहे है वन में।
लेकिन अन्त में देख सका, मैं उसको मेरे मन में।।**

तुलसीदास जी को रामकृपा प्राप्ति का रहस्य तथा प्रभु राम के दर्शन प्राप्ति का रहस्य स्वयं साक्षात् आञ्जनेय स्वामी ने बताया। आप सभी यह जानते हैं कि आञ्जनेय स्वामी अर्थात् हनुमानजी के विषय में कहा जाता है कि जहाँ राम कथा होती है, वहाँ भवन में जब कोई भी नहीं आया हो अर्थात् सबसे पहले वे ही आते हैं और कथा समाप्ति पर सभी श्रोतागणों के जाने के बाद अर्थात् सबके आखिर में वे जाते हैं। यदि आप में सच्ची लगन व दृष्टि हो तो आप हनुमानजी के दर्शन कर सकते हैं। तुलसीदास जी को इस बात में पूर्ण विश्वास था। वे कोई बुद्ध नहीं थे, पढ़े-लिखे थे, विद्वान थे,

कवि और चित्रकार थे और युवा भी थे। फिर भी उनके हृदय में श्रद्धा और दृढ़ विश्वास था और इसी श्रद्धा और विश्वास के कारण उन्होंने इस बात को परिपूर्णरूपेण ग्रहण करके निश्चय किया कि मैं हनुमानजी के दर्शन करूंगा। उन्हें विश्वास था कि राम कथा प्रारंभ होने के पूर्व सबसे पहले आने वाले और सबसे अन्त में जाने वाले हनुमान जी ही होंगे, फिर चाहे वह किसी भी स्वरूप में हों। उन्होंने इस बात का भावार्थ लिया, मार्मिक गूढ़ार्थ लिया। केवल स्थूलार्थ नहीं लिया कि हनुमान जी पूंछधारी कपीश्वर के रूप में ही आयेंगे। पहले दो-तीन दिन मात्र स्थूलार्थ होने के कारण उन्होंने समझा कि हनुमानजी नहीं आए, क्योंकि जो श्रोतागण आए हैं वे हम जैसे मानव ही हैं। किन्तु फिर सोचा कि इस बात में अवश्य कुछ मर्म है। मैंने भूल की है। इस बात में मात्र इतना संकेत है कि सबसे पहले आने वाले और अन्त में जाने वाले हनुमान जी हैं। इसीलिए आज मैं खाली भवन में बैठकर देखूंगा कि कौन सबसे पहले आता है और सबसे आखिर में जाता है। उन्होंने एक वृद्ध ब्राह्मण को सबसे पहले बैठे हुए देखा, उन्हें विश्वास हो गया और तुलसीदास जी ने उनके चरण पकड़ लिए। इस प्रकार बात का मार्मिक अर्थ लेने और पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के कारण तुलसीदास जी को हनुमान जी के दर्शन हुए।

कलियुग में इस प्रकार की श्रद्धा और विश्वास बहुत कम है, इसे अंधविश्वास समझा जाता है। हम नहीं जानते हैं कि जो सूक्ष्म है, अदृश्य है, अव्यक्त है वह अधिक सत्य है। जो दृश्य, स्थूल और व्यक्त है, जो पहले नहीं रहा है, कुछ समय पूर्व जिसका उद्भव हुआ है और कुछ समय बाद चला जाएगा वह असत्य है, नाशवान है। इसीलिए कहा गया है अदृश्य ही सत्य है। संत तुलसीदास के जीवन में वही संकेत है जो गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ (९/३० गीता)

प्रारम्भ में तुलसीदास जी कितने ही पतित रहे, मोह-माया के पाश में फंसे रहे, किन्तु अपनी दुर्दशा का ज्ञान होते ही उन्होंने होश में आकर यह संकल्प लिया कि अब मैं भूल नहीं करूंगा, अब तक जो हुआ वह हुआ, अब मैं पुनः यही भूल नहीं करूंगा। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक गीत की रचना की है

अब लौं नसानि अब न नसैहीं।

राम कृपा भवनिसासिरानी जागे फिरि न डसैं हों।।

यही तो सच्चे परिवर्तन का स्वरूप है। यदि हम गलत अथवा नहीं करने योग्य कार्य करते हैं और फिर उसका पश्चात्ताप भी करते हैं और पुनः वही भूल करते हैं तो यह सच्चा पश्चात्ताप नहीं हुआ। पश्चात्ताप का यह स्वरूप नहीं है कि हमसे भूल हो गयी, यह कहकर उसी भूल को फिर दोहराने लगे। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि जो भी गलती हो गयी है वह अब आगे नहीं होगी, कदापि नहीं होगी। जो मनुष्य इस निश्चय पर अटल रहता है उसका भाग्योदय हो जाता है। थूकी हुई चीज को वह पुनः ग्रहण नहीं करता है। पश्चात्ताप के सच्चे संकल्प के कारण ही तुलसीदास जी के जीवन से ममता-मोह उसी प्रकार दूर हो गए जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अंधकार हट जाता है। कामी, भोगी व आसक्त युवक पश्चात्ताप के संकल्प के बाद जिज्ञासु, मुमुक्षु, भगवत्-प्रेमी तथा भावयुक्त भक्त बन गया। इस सच्चे परिवर्तन के परिणामस्वरूप हमें यह रामचरितमानस मिला है जिसके आदर्शों पर चल कर अनेक बद्ध जीवात्माओं ने अपना जन्म सार्थक किया है और इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप हमें यह भवन (तुलसी कुटीर) भी मिला है जो बीकानेर के लिए एक अमूल्य रत्न है और जीवात्मा के लिए भगवान् की देन है।

संत तुलसीदास ने संस्कृत भाषा की वाल्मीकि रामायण को जन-जन तक पहुँचाने के लिए इसे अवधी भाषा में कविता रूप में लिखा। उनकी इस रचना पर वाराणसी के संस्कृतज्ञ पण्डितों ने टीका-टिप्पणी करते हुए कहा

कि यह पवित्र रामायण सर्वसाधारण के कान में नहीं डाली जानी चाहिए। साधारण भाषा में लिखे जाने से यह पवित्र ग्रन्थ अशुद्ध हो गया है, यह केवल संस्कृत में लिखा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि इस विषय में निर्णय वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर में होना चाहिए। पाण्डुलिपि मंदिर में रख दी गई। पूरी सभा बैठी और संत तुलसीदास भी बैठे। तभी एक अद्भुत चमत्कार हुआ। पहले तो आंधी उठी, अंधकार छा गया। इसके बाद एक ही क्षण में महान प्रकाश हुआ, मन्दिर की सभी घंटियां स्वतः बजने लगीं, हनुमानजी प्रकट हुए। सभी ने देखा कि पाण्डुलिपि के ऊपर त्रिशूल की नोक से राम-राम लिखा हुआ था। भगवान् ने अपना परिपूर्ण आशीर्वाद और अनुग्रह देते हुए कहा कि मैं इसको स्वीकार करता हूँ। इसके बाद पण्डितों का अहंकार नम्रता में परिवर्तित हो गया। उन्होंने तुलसीदास जी से कहा कि हम धन्य हुए कि आपने ऐसा ग्रन्थ दिया है जो साक्षात् भगवत् अनुग्रह को प्रमाणित करता है। इसमें मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्री राम की दिव्य अवतरण लीला के साथ-साथ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति का उपदेश भी है। इसके उत्तर भाग में काकभुशुण्डी व गरुड़ के संवाद द्वारा जितना ज्ञान दान किया गया है, वह अवर्णनीय है।

भगवान् राम अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए पुनः द्वारप युग में कृष्ण अवतार लेकर आते हैं। वे हमें यही कहते हैं कि इस माया की रचना में, इस प्रपंच में हम अपने पूर्वजन्मकृत कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगने के लिए आए हैं किन्तु भगवान् ने हमें यहाँ कर्मफल भोगते-भोगते साधना करके मोक्ष प्राप्ति के लिए भेजा है। कर्मफलप्राप्ति के लिए कर्मफल का भोग अनिवार्य है लेकिन मोक्षप्राप्ति के लिए जो साधना करनी है वह हमारे अपने संकल्प पर निर्भर है, इसको कहते हैं सत्संकल्प, शुभेच्छा। यह तो प्रभु ने हमारे हाथ में सौंपा है, उन्होंने इसके लिए परिपूर्ण सामग्री दी है। हमें विचार शक्ति दी है, अनेक ग्रंथों द्वारा ज्ञान का ऐश्वर्य दिया है, समय-समय पर संतों के माध्यम से हमें चेतावनी दी है हे मानव! यह अनित्य प्रपञ्च है, यहाँ

सभी पदार्थ, सब नाम-रूप नाशवान हैं, नश्वर हैं। भाष्यकार भगवान् आदिशंकराचार्य अपने विवेकचूड़ामणि नामक ग्रन्थ में कहते हैं कि जो भी देखा जाता है वह क्षणिक है, वह नाशवान है। **यद् दृश्यं तद् नश्यम्** पांचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो भी हम अनुभव करते हैं वह नाशवान है। केवल मात्र एक अविनाशी तत्त्व है उसे प्रभु कहो, परब्रह्म कहो, आत्मा कहो या कुछ भी न कहो। उपनिषदों में भी कहा है **ओम तत्सत् न इदम्। तत्सत् यद् तद् बुद्धिमग्राह्यमतीन्द्रियम्** वही सत्य है, यह नहीं। वह सत्य, शाश्वत, अविनाशी तत्त्व इन्द्रियों से परे है। उसी शाश्वत, अविनाशी, परिपूर्ण ब्रह्म की अनुभूति के द्वारा शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी तथा दिव्य अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होगा। शाश्वत शान्ति और आनन्द परिपूर्ण ब्रह्म में है, इस क्षणिक दृश्य संसार में नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। (९/३३ गीता)

मेरा भजन करने से तुम्हारा जन्म सफल होगा। प्रभु ऐसा क्यों कहते हैं? मेरा भजन का अर्थ क्या है? यदि हम अशाश्वत अनित्य वस्तु के पीछे जायेंगे तो उनके द्वारा हमें जो अनुभव प्राप्त होगा वह भी क्षणिक व नाशवान होगा। नाशवान वस्तु के आधार पर जो अनुभव होता है वह भी नाशवान ही होता है। इसी प्रकार नित्य तत्त्व, शाश्वत तत्त्व से प्राप्त अनुभूति भी नित्य होगी, शाश्वत होगी और वह कभी नहीं मिटेगी। इसी अनुभूति की प्राप्ति की आवश्यकता है। गीता में भगवान् कहते हैं

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (७/१४ गीता)

इसीलिए भगवान् ने **भजस्व माम्** कहा है मुझे जो प्राप्त करता है वही इस भीषण माया को पार कर सकता है इसीलिए मेरे भजन करने की आवश्यकता है। यदि आप नित्य तत्त्व की उपासना करते हैं, भक्ति भजन करते हैं तो माया आपके पास नहीं आ सकती है। माया स्वयं आपके

अनुकूल बन जाती है और आपको भगवान् से मिला देती है। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में भी यही बात है। जब हम अनुग्रहस्वरूपा भगवती मां लक्ष्मी की शरण जाकर उनकी कृपा प्राप्त कर लेते हैं तो वे स्वयं हमें भगवान् से मिला देती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है **नान्यः पन्था विद्यते अयनाय**। यदि हम ऐसा सोचते हैं कि प्रभु उपासना, भगवत् भक्ति और भजन के बिना हम इस प्रपंच के जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इत्यादि दुःखों से मुक्त हो सकते हैं तो हम मूर्ख हैं। शेष सब कुछ संभव हो सकता है लेकिन यह संभव नहीं हो सकता है। भगवान् को छोड़कर शान्ति और आनन्द नहीं मिल सकता है। जो व्यक्ति सोचता है कि इस प्रपंच में, अल्प वस्तुओं के द्वारा सुख, शान्ति व आनन्द प्राप्त होगा, वह अन्त में रोता-रोता ही जाएगा। इस प्रपंच में तिनका भर भी सुख नहीं है **सर्वं दुःखं विवेकिनः।**

हम यहाँ इस प्रपंच में सुख के लिए नहीं आए हैं। हम तो पुरुषार्थ द्वारा भगवत् प्राप्ति के लिए यहाँ आए हैं। अस्पताल में कोई मनुष्य भोग करने के लिए भरती नहीं होता है अपितु रोग मुक्ति के लिए जाता है। रोग से मुक्त होने के लिए उसे कड़वी दवा निगलनी होगी, दुःखदायी ऑपरेशन भी सहन करना होगा, सब करना होगा ताकि अन्त में वह पीड़ामुक्त, रोगमुक्त तथा स्वस्थ होकर अस्पताल से बाहर आए। हम अस्पताल में मजा करने के लिए नहीं जाते हैं, यह सोचकर नहीं जाते हैं कि हम वहाँ आराम से रहेंगे। इंजेक्शन, चीरफाड़, कड़वी दवा आदि ये सब हम नहीं चाहते हैं फिर भी इन सबके लिए तैयार होकर ही अस्पताल आते हैं। कोई भी कड़वी दवा पसन्द नहीं करता है फिर भी पीनी पड़ती है। थोड़ा कांटा चुभ जाए तो हम चिल्लाते हैं लेकिन इंजेक्शन के लिए स्वयं ही हाथ पसार देते हैं। बड़ी पीड़ा से मुक्ति के लिए हम छोटी पीड़ा को सहन कर लेते हैं। बड़ी भारी वेदना से मुक्ति के लिए हम सर्जरी, ऑपरेशन को स्वीकार कर यह भी लिख देते हैं कि ऑपरेशन टेबल पर मृत्यु हो गई तो कोई बात नहीं। हम इतना सब

केवल एक दिन मरने वाले, नाश होकर सड़ने वाले, मुट्ठी भर राख होने वाले, कीड़ों का आहार बनने वाले, इस हड्डी-मांस के पिंजरे के लिए सहन करने को तैयार हैं जिससे यह रोगमुक्त हो जाए।

इसी भावना से संसार के अस्पताल में आना चाहिए। भवरोग से मुक्ति के लिए ही हम इस संसार रूपी अस्पताल में आते हैं। इस संसार में प्राप्त होने वाले दुःख दर्द इत्यादि के लिए हमें तैयार रहना चाहिए क्योंकि इन छोटी पीड़ाओं को सहन करने के बाद हमें भवरोग से मुक्ति मिलती है और हम स्वस्थ होकर बाहर आते हैं। इसी भवरोग से मुक्ति में आनन्द है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।। (२/१४ गीता)

इसीलिए संसार के इन दुःखों को सहन कर लो और साधना में लग जाओ तो तुम जीत जाओगे। तुम जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यहाँ आए हो वह भी पूरा हो जाएगा। उसके बाद कोई कमी नहीं है। आनन्द ही आनन्द है। हम यहाँ सुख भोगने के लिए आए हैं, इस भ्रान्ति में नहीं रहना है। यहाँ सुख नहीं है, शान्ति नहीं है, तृप्ति नहीं है, आनन्द नहीं है। इस प्रपंच में हम यातना शरीर धारण करके आए हैं और यहाँ हम सुख की प्रतीक्षा करें तो हम मूर्ख हैं। रामायण, भागवत, महाभारत और अठारह पुराणों में यदि कहीं भी यह लिखा है कि जीवात्मा को संसार में सुख मिलेगा तो हमें बता दें। क्या किसी ऋषि, मुनि, संत, ज्ञानी ने बताया है कि हमें संसार में सुख मिलेगा? फिर क्यों हम सोचते हैं कि हमें संसार में सुख मिलेगा?

यह संसार दुःखालय है। माता-पिता बच्चों के ऊपर दोषारोपण करते हैं कि ये ही मेरे कष्टों का कारण हैं और बच्चे माता-पिता को अपने दुःखों का कारण समझते हैं। संसार में सुख कहाँ है? हम नीम के कड़वे पेड़ पर चढ़कर उसके फल को चखें और उसमें अंगूर की सी मिठास की प्रतीक्षा करें तो इसमें नीम के पेड़ का दोष नहीं है, हमारा अपना दोष है। इसी प्रकार इस

संसार में सुख नहीं है, तिनका भर भी सुख नहीं है, यह दुःख का सागर है, यहाँ सुख की अपेक्षा करना हमारी मूर्खता ही है।

लेकिन हमारा महान् अद्भुत सौभाग्य है कि हम यहाँ आए हैं। यदि हम दुःखमय संसार के इस क्षणिक जीवन को ठीक दिशा में प्रवाहित कर साधना में लग जाएं तो हमारे लिए सौभाग्य की क्या कमी है? हम शाश्वत आनन्द, परमानन्द को प्राप्त कर, उस सच्चिदानन्द में डूब करके सदा-सर्वदा आनन्द भोगते रह सकते हैं, यही एक क्षमता है, यही एक महान गुण है इस संसार के प्रपंच में। इसीलिए हम अच्छी तरह से समझें कि इस संसार में हम आए हैं साधना के लिए, भगवान् के भक्ति-भजन करने के लिए। संसार के सब दुःखों से निवृत्त होकर परमानन्द प्राप्ति के लिए यहाँ आए हैं। यदि इस दिशा में हम लग जाएं तो इस अद्भुत अतुल्य शान्ति व आनन्द फल को प्राप्त कर सकते हैं। वरना इस जगत में आकर भगवान् द्वारा बुद्धि-शक्ति दिए जाने पर और अनेक ग्रन्थों द्वारा ज्ञान प्राप्त करके भी यदि हम अज्ञान में चले और संसार हमें रुलाये तो यह हमारा बुद्धूपन है, किसी और का दोष नहीं है।

स्वयं भगवान् जब श्रीराम के रूप में इस संसार में आए तो उन्हें भी रोना पड़ा है। साक्षात् जगत्जननी माँ लक्ष्मी ने सीता के रूप को धारण किया तो उनको भी अशोक वाटिका में शोक अनुभव करना पड़ा। क्या नाम है, अशोक वाटिका। लेकिन वहाँ भी हम शोकग्रस्त सीताजी को ही देखते हैं। रामायण में कोई एक पात्र भी बिना दुःख के नहीं रहा है। राजा दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के लिए पुत्रकामेष्टि-यज्ञ करके पुत्रों को प्राप्त किया परन्तु फिर भी हाय-हाय करते हुए शोकग्रस्त अवस्था में उन्होंने प्राण त्यागे। तीनों रानियों को वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा। रामायण दुःख और शोक से ही प्रारम्भ होती है। दशरथ द्वारा अन्धे माता-पिता के एकमात्र पुत्र श्रवण की मृत्यु हो जाती है। रामायण के आरम्भ में ही श्रवण कुमार की मृत्यु का शोक है और अन्त तक यह शोक समाप्त नहीं होता है। लक्ष्मण व सीताजी दोनों ही दुःखी होते हैं जब लक्ष्मण गर्भावस्था में माता सीता को वन में छोड़ कर आते हैं।

कहो, भला रामायण में कहाँ दुःख नहीं है। रामायण में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ दुःख नहीं है। अयोध्या की प्रजा रोते-रोते अपने प्रिय राम को वन में जाते देखती है जबकि प्रातःकाल अगरू, कस्तूरी, भीमसेनी कपूर मिश्रित सुगन्धित जल से स्नान कराकर उन्हें सिंहासनारूढ़ किए जाने का मुहूर्त था। वस्त्राभूषण से सुसज्जित श्रीराम को किसी ने कहा कि यह आभूषण इत्यादि उतार दीजिए और जटा बांधकर वन को चले जाइये। ऐसी स्थिति में यदि कोई और होता तो उसी समय उसकी हृदयगति रुक जाती और हर-हर गंगे हो जाता। परन्तु भगवान् ने दिखाया कि संसार में किस प्रकार से दुःखों को सहन करना चाहिए। उन्होंने स्थितप्रज्ञ का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। (२/३८ गीता)

कुछ भी हो जाए, सुख आए अथवा दुःख आए आप सदैव सम और शान्त चित्त रहें। तभी आप जीवन में दिव्य बन सकते हैं। 'जो नर दुःख में दुःख नहीं माने' वही व्यक्ति इस संसार को जीतेगा जो सुख व दुःख दोनों में शान्त रहता है जिसके मन में, व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया है। स्वयं भगवान् ने त्याग, तपस्या, धर्म, सदाचार व संयम आधारित साधनामय जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है, उन्होंने संसार को बताया है कि पिता के लिए आदर्श पुत्र कैसा होना चाहिए? भ्राता के लिए आदर्श भ्राता कैसा होना चाहिए? पत्नी के लिए आदर्श पति कैसा होना चाहिए? मित्र के लिए आदर्श मित्र कैसा होना चाहिए तथा प्रजा के लिए आदर्श राजा कैसा होना चाहिए?

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और माता सीता ने अपने गृहस्थ जीवन द्वारा आदर्श गृहस्थ धर्म का ज्ञान दिया है। यदि पति-पत्नी उनके आदर्श गृहस्थ धर्म को अपनाएं तो उनका गृहस्थ जीवन पवित्र और दिव्य हो जाएगा। पत्नी के लिए अपने पति के अतिरिक्त, जिसके साथ उसने अग्नि भगवान् को साक्षी रख कर फेरे लिए हैं, अन्य सभी पुरुष पुत्रवत् होने चाहिए। पति के अतिरिक्त शेष मानव समुदाय के प्रति उसके भीतर मातृ भाव होना चाहिए।

प्रत्येक स्त्री में भगवती पराशक्ति का ही अंश है। स्वामी विवेकानन्द जी जब अमेरिका में थे तब उनके प्रवचन समाप्ति के बाद उनसे एक प्रश्न पूछा गया स्वामी जी! आप कुछ समय से पश्चिम में हैं, आपने पाश्चात्य समाज और भारतीय समाज में क्या अन्तर पाया है, आपके भारतीय समाज की क्या विशेषता है ? स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा कि आपके समाज में स्त्री सिर्फ एक पत्नी है और यहाँ पर स्त्री का पत्नी होना प्रधान है, यहाँ पर स्त्री का परिचय 'यह मेरी पत्नी है' कहकर करवाया जाता है जबकि हमारे भारतीय समाज में स्त्री का मातृत्व प्रधान है। हम स्त्री को मातृ दृष्टि से देखते हैं और उसका परिचय व सम्बोधन माता के रूप में जैसे 'रामू की माँ' आदि द्वारा करवाया जाता है। अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुष उसके लिए पुत्रवत् हैं इसी प्रकार पति के लिए उसकी पत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियाँ मातृवत् हैं।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु वीक्षन्ते बुद्धिमत् जनाः ॥

यही हमारे भारतवर्ष का आदर्श है। भारतवर्ष के जितने भी आदर्श हैं, वे सभी रामायण ग्रन्थ में अभिव्यक्त किए गए हैं। अत्रि ऋषि और अनसूया तथा मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सीताजी के आदर्श दाम्पत्य में हमें यह वर्णन मिलता है कि पत्नी के अतिरिक्त अन्य सब स्त्रियाँ माता समान हैं, साक्षात् भगवती हैं इसीलिए जब पार्वती जी भगवान् शंकर के मना करने पर भी श्रीराम प्रभु की परीक्षा करने के लिए सीताजी का स्वरूप लेकर वन में गई तो रामजी ने उनको देखते ही कहा माँ! यहाँ कैसे आना हुआ? भगवान् शंकर कैसे हैं? जब पार्वती जी शंकर भगवान् के पास वापिस आयी तो भगवान् शंकर ने कहा एक बार राम ने आपके लिए माँ शब्द लगाया तो अब तुम हमारे पास नहीं बैठ सकती हो, क्योंकि जब हमारे साक्षात् इष्टदेव ने तुम्हें माँ कह दिया तो अब तुम मेरे लिए भी माँ ही हो। इसी प्रकार भगवान्

राम का आदर्श था एक पत्नीव्रत। जब शूर्पणखा अत्यन्त सुन्दर रूप ऐसा रूप कि उसकी तुलना में उर्वशी, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा आदि अप्सराएं भी कान्तिहीन हो जाए धारण कर प्रभु श्रीराम के पास विवाह प्रस्ताव लेकर आई तो श्री रामचन्द्रजी ने कहा कि मैं तो प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, एक पत्नीव्रती हूँ, आप लक्ष्मण के पास जा सकती हैं।

भारतवर्ष के सच्चे गृहस्थाश्रम का यही आदर्श है। इस आदर्श पर चलने वाले दम्पतियों के गृह पवित्र हो जाते हैं, उनका गृह वैकुण्ठ हो जाता है। सचमुच ऐसा गृह साधना धाम और मोक्ष का द्वार बन जाता है। यह उज्वल दिव्य दाम्पत्य आदर्श स्वयं भगवान् राम गृहस्थियों के लिए छोड़ कर गए हैं। इसी एक बात को जीवन में ग्रहण करने से आपका पूरा जीवन योगमय बन सकता है। यदि आप परम पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए साधना करना चाहते हो तो आपको रामायण को पढ़ना चाहिए, उससे सीखना चाहिए। तभी आप यह जान पायेंगे कि इस प्रपंच में जन्म लेकर बिना दुःख के कोई भी मरा नहीं है, सब दुःख के भागी बने हैं और यहाँ हम इस संसार में सुख भोगने के लिए नहीं अपितु साधना द्वारा परमानन्द प्राप्ति के लिए आए हैं।

इसी प्रकार महाभारत के जितने भी पात्र हैं, सभी ने दुःख व संकट सहे हैं। अठारह पुराणों में भी यही बात अच्छी तरह समझाने के लिए कहा है ताकि दुःख आए तो हम भयभीत न हों, विचलित न हों, मानसिक अवसाद की स्थिति में नहीं पहुँचें। हमारे धर्मग्रन्थों ने हमारे भीतर इतनी शक्ति दी है कि अगर दुःख आए तो हम यह मानकर कि यह संसार दुःखालय है, सब सहन कर लेंगे। यह कार्य करने के लिए एक ही महत्त्वपूर्ण उपाय है हर परिस्थिति में भगवत्-भजन। हम यहाँ साधना, भगवद्-भक्ति भजन के लिए आए हैं और हमें इसमें लग जाना चाहिए। स्वयं संत तुलसीदासजी कहते हैं

हिम ते अनल प्रकट बरू होई । विमुख राम सुख पाव न कोई।।

हिम से अग्नि प्रगट कर सकते हैं, सूखे बालू को निचोड़ कर तेल निकाल सकते हैं लेकिन भगवान् के भजन को छोड़कर हम सुख प्राप्त कर लेंगे, ऐसा मानना केवल मन की भ्रांति है। सब संभव है परन्तु यह संभव नहीं है और कहते हैं

तृषा जाई बरू मृग जल पाना। बरू जामहिं सस सीस विषाना।

अंधकार बरू रविहि नसावै। राम विमुख न जीव सुख पावे।।

आप मृगमरीचिका के जल से प्यास बुझा सकते हैं, खरगोश के सींग पर शोध कर सकते हैं, अन्धकार सूर्य को निगल सकता है। यह सब संभव हो सकता है परन्तु राम विमुख, भगवत् साधना न करने वाला जीवन में कभी सुख नहीं पा सकता है। भगवान् को परम लक्ष्य मानकर यदि हम अपना सम्पूर्ण जीवन साधना व भगवत्-भजन में लगा दें तो हम इस जीवन नामक खेल में जीत प्राप्त कर लेंगे। परमार्थ की साधना का जीवन ही वास्तविक है। यह तुलसीदासजी का वचन है और यही पूर्णावतार जगद्गुरु श्रीकृष्ण का वचन है। जितने ग्रन्थ हैं, जितने संत हैं, सबका यही कहना है भगवान् ही आनन्द के स्रोत हैं अन्यत्र कहीं सुख और आनन्द नहीं है। प्रपंच में तो दुःख है। प्रपंच में सुख मिलेगा, ऐसा कहने वाला नास्तिक है। वह ग्रन्थों के ज्ञान और सन्तों के उपदेश को नहीं मानता है। भगवान् के वचनों को भी मानने से इन्कार करता है क्योंकि भगवान् ने स्वयं कहा है प्रपंच में सिर्फ दुःख है। यह बात सभी ग्रन्थों में कूट-कूट कर भरी है। यदि हम सुख के लिए इन क्षणिक नाशवान वस्तु पदार्थों के पीछे दौड़ते-भागते हैं तो हम नास्तिक हैं। आस्तिक व नास्तिक में यही अंतर है।

यदि हमारे भीतर श्रद्धा, विश्वास है; हम शास्त्रों को सच्चा मानते हैं; भगवत् वाक्य को महत्ता देते हैं; सन्तों के उपदेशों को सच मानते हैं तो हम

भगवत् प्राप्ति की साधना में लग जायेंगे और अपने जीवन को सफल बनायेंगे। यही आस्तिकता है। सच्ची श्रद्धा और विश्वास, सन्तों की वाणी और ग्रन्थों के ज्ञान को सच्चा मानने में है। उनके बताए ज्ञानोपदेशों पर चलने का हमारा प्रयत्न ही हमारे भीतर सच्ची श्रद्धा और विश्वास का एकमात्र प्रमाण है। हरि ॐ तत्सत्!

४. शीघ्र भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?^४

आनन्दमय आत्मस्वरूप, परमपिता परमात्मा के दिव्य परिवार, तुलसी सत्संग मंडल के भगवद् भक्त, धर्मप्रेमी, सत्संगी वृन्द!

इस जीवन में भक्ति मार्ग में भगवान् का भजन करते हुए, उनकी आराधना करते हुए उनको प्रसन्न करने और उनका अनुग्रह प्राप्त करने की चेष्टा यदि हम करते हैं तो समझो कि यह हमारे पूर्व जन्मकृत महान् पुण्यों का फल है। इस प्रकार का एक महान सौभाग्य प्राप्त करके भक्ति भजन, आराधना, उपासना, प्रार्थना में लगे रहने के साथ-साथ हमें विवेक बुद्धि का प्रयोग करके यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि हमारे इस भक्ति मार्ग में सहायप्रद और अनुकूल तत्त्व क्या क्या है और विपरीत, प्रतिकूल और विघ्न रूप में आने वाले तत्त्व क्या क्या हैं? इन दोनों बातों पर थोड़ा विचार-विमर्श करें, तब भक्ति योग का यह अभ्यास शीघ्र ही हमें हमारे लक्ष्य तक पहुँचा देगा, जन्म सार्थक करेगा।

इसलिए भक्ति भजन के साथ-साथ, हम भगवान् द्वारा दी हुई बुद्धि का प्रयोग करके यह विचार करें कि यह उत्तम सात्त्विक जीवन जो भगवान् ने हमें अनुग्रहस्वरूप दिया है इसके शीघ्र ही सफल होने के वास्ते क्या-क्या सामग्री आवश्यक है? यदि हम ऐसा नहीं सोचते हैं और भक्ति भजन भी करते रहते हैं तो हमारे व्यावहारिक जीवन में, गृहस्थ जीवन में, औद्योगिक क्षेत्र में, अन्य सामाजिक क्षेत्र में कुछ ऐसे अवांछनीय तत्त्व आ जायेंगे जो हमारी भक्ति के विकास और प्रगति के अनुकूल नहीं हैं, विपरीत हैं। तो क्या होगा? हम परिश्रम तो करते जायेंगे लेकिन आगे नहीं बढ़ पायेंगे। बड़े बैचन हो जायेंगे। हमें समझ नहीं आएगा क्या बात है मैं तो

^४ तुलसी कुटीर में दिनांक ३१-१-९२ को दिया गया प्रवचन

खूब जप कर रहा हूँ, खूब ध्यान कर रहा हूँ, उपासना करता हूँ, जल चढ़ाता हूँ, व्रतनियमादि पालन करता हूँ, तीर्थ पर्यटन भी करता हूँ, फिर भी कोई प्रगति मालूम नहीं हो रही है। ऐसा सोच करके हम परेशान हो जाते हैं। हमारे अन्दर एक प्रकार से हताशा का भाव आ जाता है। हमें लगता है कि प्रयत्न करके भी हमें कुछ प्राप्त नहीं हो रहा है। मन में ऐसे विचार उठते हैं कि पता नहीं हमने बहुत पाप किये हैं या किसी का श्राप हमारे ऊपर है या हमारे ग्रह ठीक नहीं हैं। तो इसका कारण हम अन्य तत्त्वों में खोजने की कोशिश करते हैं। हमारी जन्मकुण्डली किसी को दिखाते हैं और पूछते हैं कि मैं बहुत भजन कर रहा हूँ, बीस साल से भगवान् की भक्ति-उपासना में लगा हुआ हूँ लेकिन फिर भी कोई प्रगति नहीं है, ऐसा क्यों है?

ऐसा इसलिए है कि हमारा व्यावहारिक जीवन ठीक नहीं है। हमारा भक्ति-भजन, पूजा-पाठ, आराधना-अर्चना भगवान् तक तभी पहुँचते हैं, तभी सफल होते हैं जब हम अपने दैनिक जीवन में 'भगवान् जैसी दिव्यता' को आचरण में लाने की कोशिश करते हैं प्राचीन काल से आया हुआ एक वचन है **देवो भूत्वा देवमाराधयेत्** भगवान् की आराधना-पूजन करना है तो हमें भी उनके जैसा दिव्य बनना चाहिए माने काया वाचा मनसा सभी कार्यों में दिव्यता अभिव्यक्त होनी चाहिए। दिव्यता क्या है और दिव्यता के विपरीत क्या है भगवान् ने गीताज्ञानोपदेश के सोलहवें अध्याय में यही बताया है।

हमारी आराधना, व्रत-नियम जागरण तभी सफल होते हैं जब इन दैवी सम्पदाओं को हम अपनाते हैं; दयाशील, सत्यशील, सदाचारी, पवित्र बनते हैं। यदि व्यावहारिक जीवन में हमारा आचरण दिव्य नहीं है, पवित्र नहीं है तो हम कितना भी जल चढ़ाएँ, बेल पत्र चढ़ाएँ, आरती फेरें, घंटी बजाएँ, कितना भी भक्ति भाव, विश्वास, श्रद्धा रखें यह सब बेकार है, भगवान् को कुछ नहीं पहुँचेगा और न ही हमें कुछ प्राप्त होगा, यह आत्म-वंचना ही होगी। हम समझेंगे कि हम बहुत धार्मिक व्यक्ति हैं, व्रत

पूजा करते हैं, शीघ्र ही हमें भगवद् दर्शन प्राप्त होंगे तो यह हमारी कल्पना का ही साम्राज्य है। क्योंकि भगवान् हमारे सम्पूर्ण जीवन को देखता है, हमारी तरह उन्होंने जीवन के अलग-अलग विभाग नहीं बना रखे हैं कि मंदिर जाकर भक्ति भजन करते समय अलग बर्ताव और व्यावहारिक जगत में अलग बर्ताव।

मंदिर में आने पर हमारा क्या भाव है भगवान् केवल इतना ही नहीं देखते हैं, मंदिर के बाहर व्यावहारिक जगत में हमारा क्या बर्ताव है वह भी देखते हैं। वे ऐसा नहीं सोचते हैं कि मंदिर के बाहर व्यक्ति कुछ भी करे, मेरा मतलब नहीं है। नहीं, भगवान् तो पूरा देखते हैं कि हमारी सृष्टि के प्रति इसका क्या बर्ताव है, प्राणी मात्र के प्रति क्या बर्ताव है? किसी को दुःख तो नहीं पहुँचाया है, हिंसा तो नहीं की है? क्योंकि भगवान् और उनकी सृष्टि एक ही है। भगवान् अव्यक्त है, प्रकट नहीं है। प्रकट स्वरूप, व्यक्त स्वरूप परमात्मा ही 'सृष्टि' है। इसलिए सृष्टि के प्राणी-मात्र के प्रति बर्ताव भगवान् के प्रति ही बर्ताव है। ये दोनों अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं, इसे हमें जान लेना चाहिए। भगवान् स्वयं कहते हैं

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।। (६/३० गीता)

आप रुद्री पाठ करते हैं, उसमें भी यही आता है सब शिवमय है। पुरुषसूक्त में भी इसी दर्शन की अभिव्यक्ति है, यही अनुभव विष्णु भगवान् के सम्बन्ध में है। इसलिए मंदिर में भी उनके साथ व्यवहार है और बाहर व्यावहारिक जगत में भी उनके साथ ही व्यवहार है। भक्ति-भजन-आराधना और व्यवहार में एकता रखेंगे तभी आपकी भक्ति, साधना सफल होगी। इसलिए भक्ति में प्रगति न होने का कारण बाहर के तत्त्वों में खोजने की जरूरत नहीं है। हमें अपने व्यावहारिक जीवन पर एक बार दृष्टि डालकर देखनी चाहिए कि कौनसे ऐसे तत्त्व हैं जो हमारे आध्यात्मिक जीवन में बाधा के रूप में हैं? जैसे किसी को पुरानी खांसी है तो खांसी के कारण रात को

निद्रा नहीं आती है। निद्रा नहीं आने के कारण प्रातःकाल में थकान रहती है और उसके कारण व्यवहार में, व्यापार में, उद्योग में बाधा होती है। इसलिए वह डॉक्टर, हकीम या वैद्य के पास जाता है। डॉक्टर के पास जाने से वह अच्छी तरह से परीक्षा करके दवाई दे देता है और कहता है कि कोई बात नहीं, एक-दो महीने में आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। लेकिन जो वैद्य होता है वह अच्छी दवाई देकर कहता है कि यदि आपको बिल्कुल ठीक होना है तो दवाई को इस अनुपान के साथ लेना होगा तभी दवाई अच्छी तरह से काम करेगी।

अनुपान कई प्रकार के होते हैं। कोई दवा शहद के साथ लेनी होती है, कोई दवा छाछ या मट्ठे के साथ लेनी होती है और कोई दवा गर्म दूध के साथ लेनी होती है। जिस चीज के साथ दवा का सेवन करने में जल्दी फायदा होता है उसे अनुपान कहते हैं। साथ-साथ में, इलाज के समय उस औषधि से जल्दी ठीक होना है तो खान-पान में कुछ वस्तुओं का सेवन मना करते हैं जो कुपथ्य है, वर्जनीय है। जैसा कि खांसी का इलाज करते वक्त ठंडा पानी नहीं पीना चाहिए, ज्यादा दूध का सेवन नहीं होना चाहिए, कफ बनता है तो खांसी बढ़ेगी। ऐसा करके कुछ चीजों का परहेज करने को बोलते हैं। वैद्य कहता है कि हमारी दवा तो अचूक है, यदि इन चीजों का सेवन किया तो उसका असर कम होगा। इसलिए अनुपान और कुपथ्य इन दोनों बातों का हमें ध्यान रखना चाहिए।

यदि अनुपान और कुपथ्य के इस न्याय को हम अपने आध्यात्मिक जीवन में, साधना, उपासना, भजन में प्रयोग करें तो हमें मालूम होगा कि यह इसमें भी लागू हैं। हमारी साधना, भक्ति-भजन की सफलता के लिए भी कुछ करना आवश्यक है और कुछ नहीं करना है। इस सम्बन्ध में भगवान् स्वयं बताते हैं कि हमारी भक्ति करने वाला, हमारी प्राप्ति के वास्ते चेष्टा करने वाला, हमारा जो भक्त है उसकी क्या पहचान है, उसकी क्या चेष्टा है, उसका क्या स्वभाव है, प्रपंच में रहकर वह कैसा बर्ताव करता है? अपने

व्यक्तिगत जीवन में और दूसरों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करता है? पूर्णावतार जगद्गुरु भगवान् श्री कृष्ण अपने अमूल्य दिव्य गीताज्ञानोपदेश के बारहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध में अपने प्रिय भक्त के लक्षण इस प्रकार बताते हैं

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ (१२/१३ गीता)

वही मेरा प्रिय भक्त है जो सब प्राणियों के प्रति द्वेष भाव से रहित है, सबके प्रति मैत्री और करुणा का भाव रखता है, मोह-ममता, अहंकार से रहित है, सुख-दुःख में सम रहने वाला और क्षमाशील है। ऐसा कहकर भगवान् स्वयं बताते हैं कि हमारा भक्त कैसा होना चाहिए? हमारे भक्त में क्या-क्या सद्गुण होने चाहिए जिससे कि उनकी भक्ति बहुत ऊँचे दर्जे की हो जाए और वह हमें अत्यन्त प्रियकर हो जाए। यद्यपि हमारे लिए कोई प्रिय भी नहीं है, अप्रिय भी नहीं है। मैं समदृष्टा हूँ। हमारे लिए सब एक ही है। फिर भी इस प्रकार आदर्श उत्तम व्यवहार करते हुए जो हमारी अनन्य भक्ति करता है, वह हमारा अत्यन्त प्यारा भक्त है।

तो इस प्रकार भगवान् हमें बताते हैं कि वे भक्त में भक्ति-भजन के साथ और क्या चाहते हैं, क्या अपेक्षा करते हैं? क्योंकि भक्त कोई अनुचित व्यवहार करे तो भगवान् का अपयश होता है। वाह! वाह! देखो, वह अपने को भगवान् का भक्त कहता है और ऐसा अनुचित व्यवहार करता है। यह भगवान् का भक्त होकर इस प्रकार का व्यवहार करे तो फिर औरों की क्या बात है? ऐसा सब कहते हैं। जैसा कि किसी परिवार का सुपुत्र अनुचित कार्य करे तो अपयश पिता का ही होता है। इसलिए भक्त को बहुत जागृति के साथ, सचेत होकर अपने चरित्र को अत्यन्त आदर्श बनाना चाहिए। नहीं तो, वह जिस भगवान् का भक्त है, उस भगवान् के बारे में दुनिया वाले अच्छा नहीं कहेंगे। माता भगवती का भक्त होकर यदि कोई भद्दा व्यवहार करता है तो उसकी भक्ति का क्या प्रयोजन है? लोग कहेंगे कि वह भगवती

कैसी है जिनका भक्त इस प्रकार का है? ऐसा करके एक भक्त के जीवन का उनके इष्ट देवता के नाम पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। हनुमान जी जैसे परम पवित्र आचरण वाले ब्रह्मचारी, इन्द्रियजित, मनोजित का भक्त होकर आदमी व्यभिचारी हो, अनुचित व्यवहार करे तो ऐसी भक्ति का क्या मोल है? क्या प्रयोजन है?

इसलिए भगवान् अपनी असीम कृपा कर गीताज्ञानोपदेश के बारहवें अध्याय भक्तियोग में बहुत स्पष्ट रूप से, बहुत सुन्दर ढंग से, अपने अमृत-तुल्य वचनों के द्वारा बताते हैं कि हमारे भक्त में क्या दैवी सम्पदा होनी चाहिए? क्या सात्त्विक सद्गुण होने चाहिए जिससे कि उसकी भक्ति, भजन, प्रार्थना प्रगतिशील होकर शीघ्रातिशीघ्र उसे आध्यात्मिक मार्ग में बहुत ऊँचाई तक ले जा सके; भगवान् के निकट ले जा सके। फिर वह यहाँ पर रहते हुए भी भगवान् का आनन्द, भगवान् की शान्ति, सर्वत्र उनके अस्तित्व की अनुभूति प्राप्त कर सकता है और उसके जीवन में एक प्रकार का अत्यन्त सुन्दर परिवर्तन आ जाता है। उसका जीवन एक ऊँची भूमिका में पहुँच जाता है, सब उससे प्रेरित होते हैं। उसके जीवन का औरोँ पर भी अच्छा प्रभाव होता है और वह अपने समय के समाज में एक आशीर्वाद के रूप में, अंधकार में प्रकाश के रूप में रहता है।

जहाँ पर भक्त रहता है वहाँ का वातावरण पवित्र होना चाहिए। उसके निवास स्थान के पास आते ही अड़ोस-पड़ोस के आदमियों में भक्ति की लहर उठनी चाहिए, भक्ति-भाव जागना चाहिए। जिन्होंने 'चैतन्य चरितावली' पढ़ी है वे जानते हैं कि श्रीगौरांग महाप्रभु के कीर्तन की आवाज सुनते ही प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक प्रकार का आवेश आ जाता था। कीर्तन करते-करते यदि उन्होंने किसी को स्पर्श कर दिया तो वह आदमी एकदम भावावेश में आकर विभोर हो जाता था चाहे उस आदमी की कीर्तन में रुचि न हो, भगवत्-नाम में विश्वास भी न हो। ऐसा एक प्रकार का प्रभाव भक्त में, उनकी भक्ति से उत्पन्न होता है। भगवान् स्वयं कहते हैं कि जहाँ

पर मेरे भक्त एकत्रित होकर मेरा नाम गाते हैं, मैं वहाँ पर विराजमान हूँ। मैं इधर-उधर, वैकुण्ठ में, किसी और भूमिका में नहीं हूँ जहाँ पर मेरे भक्त एकत्रित होकर मेरा भजन करते हैं वहाँ पर मैं हूँ। यह निश्चयात्मक है। आप विश्वास रखो। यह प्रभाव होता है सच्चे भक्तों का।

भक्त का भगवान् के प्रति अनन्य-भक्ति भाव होना चाहिए। उनकी पूरी की पूरी आसक्ति, उनकी ममता, उनका प्रेम भगवान् में ही होना चाहिए। अन्य चीजों के प्रति उनका अनासक्त भाव होना चाहिए, वैराग्य होना चाहिए। उनके अन्दर एक प्रकार का निस्पृह-भाव होना चाहिए। किसी के प्रति ममता-मोह नहीं होना चाहिए। हाँ, लेकिन व्यवहार-क्षेत्र के किसी प्रसंग में जो भाव प्रकट करना है, वह प्रकट करता है। लेकिन उनका वास्तविक हृदय तो भगवान् के चरणों में निरन्तर लगा रहता है और वह भी कैसे ? स्वामी रामकृष्ण परमहंस देव कहते हैं कि मधुमक्खी के बर्ताव जैसा सच्चे भक्त का व्यवहार होना चाहिए। केवल फूलों के ऊपर ही उसकी दृष्टि है, फूलों को ही चाहती है, फूलों के ऊपर ही बैठती है, फूलों के अन्दर जो कुछ है उसी का सेवन करती है। कहीं इधर-उधर गन्दगी पर नहीं बैठती है। अन्य कोई वस्तु से उसे कोई मतलब नहीं है, सम्बन्ध नहीं है। मधुमक्खी जैसा होना चाहिए। अनन्य भक्ति होनी चाहिए, भगवान् में ही हमारी आस्था और प्रेम होना चाहिए और कहीं नहीं।

घर की मक्खी जैसा बर्ताव नहीं होना चाहिए। रसोई में अच्छी मिठाई बनती है तो उसके ऊपर भी बैठेगी और कहीं थूका हुआ है तो उसके ऊपर भी बैठेगी। भगवान् के पूजा घर में, भगवान् को अर्पण करने के लिए चंदन घिसा जा रहा है तो उसके ऊपर भी बैठेगी और कोई मरा हुआ जानवर, छिपकली आदि को बाहर फेंको तो उसके ऊपर भी बैठ जाएगी। कूड़े-कचरे के ऊपर भी बैठेगी, सुगन्धि के ऊपर भी बैठेगी। अभी इधर, अभी उधर। भक्त को ऐसा नहीं करना चाहिए। उनकी अनन्य, अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिए। भगवान् में ही अनन्य प्रेम होना चाहिए।

भगवान् की जो यह सृष्टि है, उसके प्रति दया हो सकती है, मैत्री हो सकती है, करुणा हो सकती है। लेकिन प्रीति, प्रेम और अपनत्व केवल मात्र भगवान् में होना चाहिए। अपना कौन है? कोई नहीं। मेरा यहाँ कोई नहीं है, ना मैं किसी का हूँ। कहा है

किसके हो तुम, कौन तुम्हारा।

किसके बल हरिनाम बिसारा।।

किसके हो तुम? जब आए तो कितने यार दोस्तों को, कितने बंधु-बंधवों को, कितने रिश्तेदारों को साथ लेकर आए और कौन भला तुम्हारे साथ जाएगा? कौनसा रिश्तेदार जाएगा? यह सोचना चाहिए, यह समझना चाहिए। हमारा यहाँ कोई नहीं है। जब हम यहाँ आए तो हमारे संग दो आए थे। एक भगवान्, एक मृत्यु। ये दो ही साथ आते हैं। जन्म लेते ही जब बच्चा सांस लेना शुरू करता है तो क्या हो रहा है, हर सांस में उसकी आयु घट रही है। जीवन में कितने श्वास-प्रश्वास लेने हैं, यह गिनती करके ब्रह्मा हमें पृथ्वी पर भेजता है। जैसे-जैसे यह श्वास व्यय होती जाती है, उतनी उतनी उनकी दी हुई आयु का समय घटता जाता है। इस दृष्टि से हम विश्लेषण करें तो मालूम होगा यह हमारा तथाकथित जीवन जो है, वह मृत्यु की ओर एक यात्रा है, आगे बढ़ना है और वास्तव में देखा जाए तो अंतिम घड़ी के निकट जाने की प्रक्रिया है।

हे गाफिल! जानते नहीं हो, घड़ी तुमको क्या इशारा दे रही है? अरे! मूर्ख, जब घड़ी ६० मिनट में एक बार 'टन' करके आवाज कर रही है तो तुम्हें चेतावनी दे रही है, जगा रही है देखो भाई इन्सान! तुम्हारी आयु में एक घंटा कम हो गया है, जो कुछ करना है उसके लिए अब एक घंटा कम प्राप्त है। ऐसा करके हर घंटे में तुमको चेतावनी देती है लेकिन तुम उसके संदेश को नहीं सुनते हो, न ही समझ रहे हो। यह एक उर्दू शेर का भाव है। घट रही है आयु, जब घड़ी आगे बढ़ती है। इसलिए तो कहा है **उत्तिष्ठत, जाग्रत।** उठो! जाग्रत रहो! इन सब चीजों, संकेतों से समझ लो कि जो

कुछ करना है, वह जल्दी करना है। कल जो करना है, वह आज ही कर लें। आज शाम तक जो किया जा सकता है उसको अभी क्यों नहीं कर लें ?

अभी से प्रभु की अनन्य भक्ति में लग जाएँ। केवल मात्र उनकी प्राप्ति की इच्छा हो, अन्य कोई चीज की इच्छा नहीं। जैसा कि संत तुलसीदास जी कहते हैं “हे प्रभु! आपके सिवा, हमारे हृदय में कोई इच्छा नहीं है। **नान्यास्पृहा रघुपते** मैं सच कह रह रहा हूँ या झूठ, यह तो प्रभु आप अच्छी तरह से जानते हैं क्योंकि आप सब के हृदय में रहने वाले अन्तर्यामी हो, अन्तर्वासी हो। आप हमारे हृदय को नहीं जानोगे तो और कौन जान सकेगा? आपसे हम कोई बात नहीं छिपा सकते हैं।” इस प्रकार अनन्य और अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिए।

भक्त को हमेशा भगवान् के अस्तित्व का अनुभव करते हुए अति नम्र और नतमस्तक मुद्रा में रहना चाहिए। जैसे हनुमान जी की आदर्श मुद्रा है क्योंकि वे हमेशा इस अनुभव में स्थित रहते हैं। **सियाराममय सब जग जानी** सब राम मय है और जहाँ पर श्री रामचन्द्र हैं, मैं कैसे अपने अहंकार को, अभिमान को प्रदर्शित कर सकता हूँ? नहीं, दासत्व हमारा स्थायी भाव है क्योंकि मैं सदा सर्वदा भगवान् के सान्निध्य में हूँ। इस प्रकार उनके अन्दर यह नम्रता का भाव रहा। महाप्रभु चैतन्य ने भी कहा है

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

भक्त को अपने आपको तृण से भी नीचा समझना चाहिए, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनना चाहिए। स्वयं तो सदा अमानी बने रहना चाहिए किन्तु दूसरों को सदा मान देना चाहिए। ऐसा भक्त ही श्री कृष्ण कीर्तन का अधिकारी है और तभी भक्त का हरि नाम संकीर्तन, भजन उपासना शीघ्रतिशीघ्र सफल होगा। यदि ये गुण नहीं है तो हमारा स्वभाव ही हमारे

रास्ते में एक बाधा की तरह रोड़े अटकाएगा। भक्ति भजन ठीक नहीं चल पाएगा, आगे नहीं बढ़ पाएगा।

गीताज्ञानोपदेश के बारहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध में बताए गये भक्त के गुणों का हमें अच्छी तरह से अध्ययन करके स्वयं से तुलना करना चाहिए कि यह सद्गुण हमारे अन्दर हैं क्या? इनके विपरीत कोई तत्त्व है तो उसको हमें निकालने की कोशिश करनी चाहिए। यह भी भक्तियोग साधना का एक अनिवार्य, आवश्यक अंग बनता है, साधना में यह भी शामिल है। यह नहीं कहना है कि किताबों में तो यह नहीं लिखा है। श्रवण, कीर्तन, मनन, अर्चन, वंदन, पादसेवन आदि नवधा भक्ति कही गयी है, इन कमियों को निकालो यह नहीं लिखा है। अपने आप समझने की बात है। भागवत में भक्तों के जीवन और उनके आदर्श चरित्र और गीताज्ञानोपदेश के द्वारा हमें यह मालूम कर लेना चाहिए कि भक्ति साधना के साथ हमें अपने व्यक्तित्व के लिए क्या कार्य करना है? कैसा व्यवहार रखना है? दोनों को साथ लेकर चलना है यह कहने की जरूरत नहीं है। जो विवेकी हैं, विचारशील हैं उनको अपने आप मालूम हो जाता है कि भगवान् मुझसे क्या अपेक्षा रखते हैं?

सत्य बोलो, ऐसा बोलने में 'झूठ मत बोलो' कहने की जरूरत है क्या? सात्त्विक आहार रखो माने तामसिक आहार मत छूओ ऐसा कहने की जरूरत है क्या? यह तो अपने आप सिद्ध होता है, स्वतः सिद्ध है। तो भगवद् भक्ति करो, भक्त बनो ऐसा बोलने में अपना व्यवहार उत्तम, आदर्श रखो कहने की जरूरत है क्या? नहीं। किसी संत ने कहा है

नारायण हरि भजन में ये पाँचों न सुहात।

विषय-भोग, निद्रा, हंसी, जगतप्रीति बहुबात।।

जो सच्चा भक्त है हरि भजन में लगा हुआ है, भगवान् की प्राप्ति के वास्ते चेष्टा कर रहा है उनको इन पाँच चीजों से दूर रहना चाहिए। ये पाँच

आसुरी तत्त्व हैं, भक्ति मार्ग में शोभायमान नहीं हैं, वर्जनीय हैं। पहला है विषयभोग अरे! भोग के लिए तुम्हारे अन्दर लालसा है तो तुम्हारी भक्ति क्या है? वह तो अशुद्ध हो गयी। अनन्य भक्ति नहीं है, अव्यभिचारिणी भक्ति नहीं है। भगवान् को भी चाहते हैं, भोग को भी चाहते हैं। सच्ची भक्ति ऐसी नहीं होती है। दूसरी चीज है निद्रा ज्यादा आलस, तमोगुण। जितनी जितनी आयु हमने निद्रा में डाल दी, उतनी उतनी हमारी आयु खो गयी, उतने ही भजन से वंचित हो गए। जो समय भजन में लगा सकते थे उसको तो हमने निद्रा में लगा दिया कुम्भकरण जैसे। उतनी आयु से भी, भजन से भी वंचित हो गए। भजन के धन का हमसे नुकसान हो गया। इसलिए कहते हैं भगवान् का सुमिरन किए बिना बिताया हुआ हर क्षण एक महान् क्षति है। तीसरी चीज है हंसी हंसी माने गंभीरता का अभाव। आध्यात्मिक जीवन को हलके तौर पर नहीं लेना चाहिए, गंभीरता से लेना चाहिए। यह खेल की बात नहीं है। अतिवाचालता भी नहीं होनी चाहिए और यदि इस माया बाजार में हम प्रीति रखेंगे तो हमारी भक्ति असली नहीं होगी, उसमें अनन्यता नहीं होगी। इसलिए कहा है

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। (१८/६२ गीता)

तन-मन-धन, पूर्ण हृदय से, सम्पूर्ण भाव से प्रभु की शरण जाएँ। तो भगवान् के आदेश के अनुसार हममें भगवद्-भक्ति के साथ-साथ, पूरे के पूरे जगत के प्रति अनासक्ति का भाव होना चाहिए। जगत के वास्ते प्रीति उचित नहीं है। सच्ची भक्ति तब ही होती है जब हम इन पाँचों चीजों को वर्जित कर के, पूर्ण हृदय से भगवान् के चरणों में प्रेम रखेंगे। तब क्या नहीं हो सकता है मीरा, ध्रुव, प्रह्लाद के उदाहरण आपके सामने हैं। इस प्रकार की हमारी भक्ति होनी चाहिए और जैसा भगवान् ने गीताज्ञानोपदेश के बारहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध में भक्त के लक्षण, उनका व्यवहार बताया है, वह हमारे जीवन से तुलना करने के लिए एक कसौटी है, मानदण्ड है।

इन बातों को आपके समक्ष रख करके परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आपका भक्ति-भजन, साधना उत्तम उत्कृष्ट श्रेणी का बने। अच्छी तरह से इन बातों पर विचार करके आप अपनी भक्ति को बहुत ऊँचे दर्जे की भक्ति बनाएं। एक परिपूर्ण, अनन्य, अव्यभिचारिणी, उत्तम सद्भक्ति के द्वारा, इस कलियुग में अवतरित होते हुए भी इस भक्ति के प्रभाव से, भगवद्-नाम के प्रभाव से इसी शरीर से, इसी जन्म में जीवन के परम लक्ष्य भगवद्-प्राप्ति को प्राप्त करके, आप सब धन्य हो जाएं, आपका जीवन सार्थक हो, जन्म सफल हो।

हरि ॐ तत्सत्!

